बिना मंज़िल के रास्ते

अनुप्रिया दीक्षित

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Anupriya Dixit 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-148-1

Cover design: Aafiya Saifi
Typesetting: Namrata Saini

First Edition: April 2026

आज फिर से बारिश हो रही थी। कितने ही दिन हो गए बादलों को बरसते। थकते नहीं शायद ये, मेरी तरह। रह रहकर फिर से घिर आने की कला जानते हैं ये। साल के चंद महीनों में कैसे खुलकर जिया जा सकता है, कैसे अपने वजूद का तीव्र एहसास कराया जा सकता है, शायद इस कला में माहिर हैं ये मेघा।

पानी ऐसे बरस रहा है जैसे कोई छोटा सा झरना पहाड़ से नीचे गिरता है, गिरते ही छोटी छोटी कई सारी नदियां बनाता हुआ और फिर अंत में जैसे वो नदिया समुद्र में मिलती हैं ठीक वैसे ही आस पास के बने समुद्र में मिलता हुआ।समुद्र ही तो बन गया है ये पानी, बिना किसी निकासी की व्यवस्था के। हम जैसे छोटी जाति और छोटी बस्ती में रहने वाले लोगों के लिए कौन निकासी की व्यवस्था कराए ? और हम में से कौन छोटी जाति का आदमी कलेक्टर के सामने जाकर जुबान चलाए क्योंकि बड़ी जाति का सरपंच तो सुनता नहीं है।

बस इन्हीं बातों का नतीजा है यह सैलाब। जो मेरे गायब होने से पहले भी ऐसा था और आज भी ऐसा ही है। बस फर्क ये हुआ कि अब इस सैलाब की तली टूटी- फूटी, आड़ी-तिरछी ईंटों की है और पहले यह निरी मिट्टी की थी।

यह सैलाब ठीक मेरे मन की तरह।

इधर उधर हर क्षण हिलोरे खाता हुआ। इसमें उठती लहरें ठीक मेरे मन में हर क्षण आ जा रहे विचारों के समान।

ये समुद्र मैं रिक्शा में बैठी ही देख रही थी, मेरे पैर जम से गए थे जैसे। पूरे रास्ते का उत्साह यहां आकर खत्म सा हो चला था। मन हजार सवाल किए जा रहा था। मेरी आँखें उस मकान को देखे जा रही थी जिसकी जगह कभी झोपडी

हुआ करती थी । इस ढ़ांचे को पूरा मकान कहना तो शायद अब भी सही नहीं। लोहे का एक गला सा गेट, कबाड़ी में लिया गया हो शायद या फिर कई साल से बारिश में खड़े खड़े गल गया है, नीचे से टूटा हुआ, घरवालों ने एक दुपट्टा बांध दिया है ताकि कोई कुत्ता बिल्ली अंदर न जा पाए। दरवाजे के बीच लगी लोहे की जालियों में इतना ज्यादा अंतर है कि अंदर का सारा नजारा साफ साफ दिख रहा है। फिलहाल कोई इंसान तो नहीं दिख रहा लेकिन यह जरूर पता लग रहा है कि घर में दो कमरे हैं, एक रसोई है और एक बाथरूम। रसोई और बाथरूम पर छत की जगह सीमेंट की टिन लगी हुई हैं। दोनों कमरे बगल में है, दाहिनी तरफ रसोई है जिसका कोई गेट नहीं है, बीच में आंगन है और गेट से सटा हुआ बाथरूम है। आंगन में एक पीले रंग का बल्ब लगाया हुआ है। रात में इसके आस पास जरूर बरसाती मच्छर जमा होते होंगे।

यह सब मैं रिक्शे में बैठी ही सोच रही थी। हिम्मत नहीं हो रही थी कि नीचे उतर जाऊ। रिक्शा वाला मेरे उतरने की बाट जोहे जा रहा था। हारकर बोल ही दिया, "बीबीजी उतर जाओ मुझे और भी सवारी देखनी हैं। "

हिम्मत करके मैं उतर गई, किराया दिया और खड़ी हो गई, उस सैलाब के सामने जो मुझे उस घर तक पहुंचने के लिए तय करना था। किस तरह की स्थिति है न,ये बाहरी समुद्र जो मुझे उस घर तक पहुंचने के लिए तय करना है ठीक वैसा ही समुद्र मुझे मेरे मन में भी तय करना है उसी घर तक पहुंचने के लिए।

कहते हैं खून के रिश्ते तो खून के ही होते हैं। ये कभी साथ नहीं छोड़ते। ऐसे रिश्तों में हम हक से मांग सकते है, हक से आ जा सकते हैं। लेकिन कितनी सच्चाई है इसमें ?

इस दुनिया में रिश्तों से भी अगर कुछ बड़ा है तो वो है ये समाज। जिसका डर इंसान से कुछ भी कर सकता है। जिसके डर के आगे खून के रिश्ते भी कोई मायने नहीं रखते।

या पता नहीं समाज के डर से ही थोड़ी बहुत नैतिकता बाकी है। कह नहीं सकते। खैर ये दार्शनिकों का मसला है और मैं कोई दार्शनिक नहीं।

मुझे तो बस एक परिवार चाहिए इस अकेली दुनिया में। समाज जो सबसे बनता है मेरे लिए उसमें कोई जगह नहीं है। शायद समाज मेरे जैसों के लिए बना ही नहीं है या फिर ये मेरे जैसों से नहीं बना है।

अपने विचारों की उधेड़बुन से निकलकर मैने अपनी सलवार को नाड़े में अटकाया ताकि वह घुटनों तक आ जाए और चल पड़ी उस समुद्र के पार बने उस घर की ओर, एक ही हाथ में कुछ सामान और अपना एक पुराना सा बैग लिए। मन में उत्साह कम और डर ज्याद था। दिल जोरों से धड़क रहा था। मेरे अस्तित्व की ही परीक्षा थी यह।

इतने साल मैने जिस दर्द में गुजारे उन दर्द के पलो में इस पल की महज आशा ही मेरे जीवन की डोर को थामे हुई थी। मेरा सारा वजूद ही इस बात पर निर्भर था कि मेरे घरवाले मुझे अपनाएंगे या नहीं। क्योंकि मेरे पास खुद के लिए जीने की कोई वजह बाकी नहीं थी।

मैं पंद्रह साल की थी जब मेरे सौतेले बाप ने मुझे अलाहाबाद ले जाने ठानी। घर की आर्थिक स्थिति बदतर थी। खाने के भी लाले पड़े थे। एक समय तो पेट भरकर खा लेते लेकिन अगले समय का कोई भरोसा न था। घर के नाम पर एक झोपडी थी और सामने पड़ा खुला आंगन।

बरसात में वह झोपडी पूरी रात टपकती और हम छः बहन भाई एक कोने में बोरा बिछा कर उसी पर दुबके बैठे रहते। सर्दी में भी इतने साधन न थे कि छह

रजाई खरीदी जाए। तीन पुरानी रजाई थी जिनमें हमारा नौ जन का परिवार जैसे तैसे ठूंसा हुआ करता था ।मेरी मां चौदह साल की थी जब उसकी शादी हुई, सोलह की जब मैं पैदा हुई और सत्रह की जब वो विधवा हुई।

बेचारी की वैवाहिक जीवन जीने की जब समझ आई तो किस्मत ने उसे वह नसीब नहीं होने दी।

एक साल की लड़की और एक बूढ़ी सास की जिम्मेदारी सीधे उसके किशोर कंधों पर आ पड़ी। ऐसे तो वह पहले भी मजदूरी पे जाती थी लेकिन अब वह इकलौती कमाने वाली थी। पूरा दिन मजदूरी से शरीर तुड़वा कर डेढ़ सौ रुपए मिलते। कभी कभार काम न मिलता तो खाने की चिंता सताने लगती।

दो साल बाद ही जब मेरी मां उन्नीस की हुई तो सास ने अपने भांजे के साथ उससे पल्ले से बांध दिया। वह भांजा यानी मेरा सौतेला बाप भी हमारे साथ ही आकर रहने लगा। आवारा था। उसकी मां टीबी से चल बसी थी और बाप शराब से। घर में अकेला ही था। कभी मजदूरी कर लेता तो कभी कुछ महीने शहर में जाकर कुछ काम कर लेता। और फिर गांव आकर शहर से कमाए पैसे शराब में उड़ा देता।

यह सब दादी को पता था लेकिन वह अक्सर कहा करती थी, " शादी की जिम्मेदारी जब कंधों पर पड़ती है तो वह आदमी को सुधार देती है और एक आदमी का मूल स्वभाव ही स्वच्छंद रहना होता है, पुरुष जब बंधन में बंधता है तभी इंसान बनता है उससे पहले वह खुले ख्यालों वाला शेर होता है "। हालांकि जब मैने होश संभाला तो उसकी यह बात पछतावे में बदल गई थी। अब वह कहने लगी थी कि इस शराबी से अच्छा तो तेरी मां और मैं अकेले ही ठीक थे।

जब मेरी मां को उसके पल्ले लगाया गया तब वह अट्ठाईस साल का था। सोचा तो गया था कि एक आदमी घर में होगा तो बाहर के सौ काम करेगा,

थोड़ा बहुत कमा के लाएगा और मेरी मां की पहाड़ सी पड़ी जिंदगी में कुछ रोशनी आएगी। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह आया, पांच बच्चे किए, दिन रात शराब पी और जुए की लत लगा के बैठ गया। घर में लड़ाइयां होने लग गई। मार पीट होने लगी। पैसे छिपाने और चोरी करने का सिलसिला चला। बात थाने तक भी जाने लगी और यही क्रम मेरे पंद्रह साल की होने तक चलता रहा। शायद बाद में भी चला हो लेकिन मुझे उसके पता नहीं।

मेरी मां बेचारी अनपढ़ इन सब चीजों को साधारण समझती थी। उसके तो जैसे कतरे कतरे में ये समा दिया गया था कि आदमी इसी तरह के होते हैं और उसका फ़र्ज़ ये सब सहना और अपनी गृहस्थी बचाए रखना था।

लेकिन इन सबके बीच भी उसने मुझे और मेरे भाई बहनों को सरकारी स्कूल में दाखिला दिला दिया। दो वजह थीं एक तो राशन मिल जाता था और दूसरा उस बेचारी को उम्मीद थी कि थोड़ा बहुत पढ़ लिख जायेंगे तो मजदूरी नहीं करनी पड़ेगी।उसकी तरह।

हमारे गांव, लीलापुर कलां, में स्कूल पांचवीं तक ही था। तय हुआ था कि पांचवीं के बाद सारे भाई बहन पड़ोसी गांव के स्कूल में जाया करेंगे।

गए भी। सौतेले बाप की मनाही के बाद भी। उसको हर चीज मना करने से ही मतलब था, बिना किसी कारण के ही। शायद अपनी मर्दानगी साबित करने के लिए। लेकिन फिर भी वह मान गया था। राशन का सोच कर। छह बच्चों का अच्छा खासा राशन मिल जाता था।

और फिर स्कूल से आकर हम जमींदारों के खेतो में भी काम करा आते थे। ठीक ठाक जिंदगी जा रही थी।

मैं दस कर चुकी थी। और फिर मेरी दादी, जो अब बस बिस्तर की होके रह गई थी, को ख्याल आया कि मेरी शादी कर देनी चाहिए। मां ने थोड़ा बहुत बोला कि अभी ओर पढ़ने दें।

कुछ पढ़ लिख जाएगी तो मजदूरी नहीं करनी पड़ेगी। पैरों पर खड़ी हो जाएगी। किसी के भरोसे नहीं रहेगी।

पर दादी का जवाब था कि औरत चाहे कितना ही पढ़ लिख जाए लेकिन एक मर्द का उसके सर पे हाथ होना बहुत जरूरी है। और पढ़ लिखकर भी चूल्हा चौका ही संभालना है। कहीं भाग जाएगी लड़की तो क्या करेंगे ? इस उम्र की लड़कियों का कुछ भरोसा नहीं किया जा सकता।

इससे अच्छा है अपनी जिम्मेदारी पूरी करें और बेटी को ब्याह दें। सौतेले बाप ने भी दादी की बात में ही हामी भरी।

जो दो बंदे घर में न के बराबर कमाई देते थे उन्हीं के पास फैसले लेने का अधिकार था। अजीब विडम्बना है न समाज की।

बाप के पास यह अधिकार इसलिए था क्योंकि वो मर्द था और समाज में मर्द होना ही किसी ओहदे से कम नहीं है।बेशक वह मर्द अपने उत्तरदायित्व को न समझता हो और बेशक वह इस प्रसंग में समाज में सबसे निचले स्तर का हो और दादी के पास ये अधिकार इसलिए था क्योंकि उसने उस पितृसत्तात्मक सोच को बनाए रखा था जिसकी उम्मीद समाज को उससे थी। ओहदे से जुडी ये छोटी से छोटी बातें हमारे मन में इस तरह पिरो दी जाती है कि ये गलत होते हुए भी हमें गलत नहीं लगती।

बल्कि इनसे हट कर कुछ करना या कहना, भले ही वह किसी व्यक्ति विशेष की भलाई के लिए हो, अपराध मान लिया जाता है।

खैर, मेरी और मां की एक न चली। बाप ने बीड़ा उठाया कि शहर में किसी अच्छे लड़के का रिश्ता देखूंगा जो पंद्रह -बीस हजार में किसी फैक्टरी में काम करता हो। ज़िन्दगी अच्छे से गुजर जाएगी इसकी। उसने मेरी मां को यह आश्वाशन दिया।

इसके बाद वह कुछ दिनों के लिए शहर चला गया और एक महीने बाद वापिस आया। नए पेंट कमीज में और एक मिठाई के डब्बे के साथ। बोला कि मैने कमला के लिए एक रिश्ता देख लिया है। लड़का अलाहाबाद का है।घर में मां बाप हैं बस, और कोई औलाद नहीं। इकलौता है। एक जूते की फैक्टरी में नौकरी करता है और प्रति माह नौ हजार कमाता है।

बाप भी एक फैक्ट्री में ही काम करता है।

पैसों के मामले में इसे इतनी तंगी नहीं देखनी पड़ेगी। मेरी मां बेचारी बहुत खुश हुई।

दादी ने खटिया पर पड़े पड़े शराबी बाप को आशीष देना शुरू कर दिया। अब लड़की खुश रह लेगी। ज़िन्दगी संवर जाएगी। क्या पढ़ लिख कर मैं मायूस रहती या पढ़ाई लिखाई से जिंदगी बिगड़ जाती ?

खैर, जब मेरी कुछ चली ही नहीं तो क्या कर सकते है। जो थोपा गया है वह मान ही सकते हैं, घुट के मानो या खुश होके। मैं खुश तो नहीं लेकिन उत्सुक जरूर थी।

बड़े शहर के बारे में सिर्फ किताब में पढ़ा था। अब देख भी लूंगी सोचा। किस तरह के लोग होंगे, कितना आधुनिक होगा, खान पान कैसा होगा, व्यवहार कैसा होगा और शहर के बाजार तो मैने कभी देखे ही नहीं थे।

मन में दुविधा से ज्यादा उतावलापन आ गया था। होने वाली जिंदगी को लेकर। अंदर ही अंदर मैं थोड़ी खुश भी हुए जा रही थी।

वह उम्र ही ऐसी होती है, सब कुछ अच्छा लगता है, शादी से ज्यादा चाव कपड़ों का होता है, चूड़ियों का होता है, पायल का होता है और मेहंदी, बिंदी, लाली, गजरे यह सब रह गया वो अलग।

मैं मन ही मन सोचे जा रही थी कि नए कपड़े डाला करुंगी। पति को खुश रखूंगी। हम कभी नहीं लड़ेंगे।

और डर भी था। वह भी शराबी निकला तो ? मारपीट करने वाला हुआ तो ?

लेकिन यह सब चीजें सिर्फ समय ही बता सकता है, इंसान नहीं। मन के एक कोने में इस डर को छिपाकर मैने उत्सुकता को हावी होने दिया।

बाप ने फरमान सुनाया कि हमें परसो अलाहाबाद जाना है। लड़के को छुट्टी नहीं मिलेगी तो कमला को वो लोग वहीं देख लेंगे। तय हुआ कि सौतेले बाप के दोस्त के घर वो लोग देख लेंगे और तरसों तक वापिस आ जायेगे। मां ने बोला भी कि वह भी जाएगी लेकिन बोल दिया गया कि दोस्त के घर इतनी जगह नहीं जो तीन तीन लोगों को रखे और फिर अम्मा व बच्चों को कौन देखेगा पीछे से ? " तू चिंता न कर मैं तरसों कमला को सही सलामत ले आऊंगा तेरे पास, आखिर मैं भी इसका बाप हूं, सौतेला ही सही "।

मां को उसकी बात सुनकर थोड़ी बहुत शांति हुई।

मां और दादी ने अगला पूरा दिन नसीहतें देने में निकाला। ज्यादा बात मत करना। जो पूछे सीधे शब्दों में बस उसका जवाब देना। अपनी कोई बेतुकी मांग मत रखना। कपड़े लते का कुछ पूछे तो बोल देना कि जैसा आप लोगों को सही लगेगा मैं वैसे ही पहन ओढ लूंगी। शगुन की चुनरी का पूछे तो बोल देना जैसी आप लोगों को सही लगे वैसी दे देना। वहा गिनाने मत लग जाना कि लाल चाहिए या महरून चाहिए या शीशे वाली चाहिए। शादी के जोड़े का पूछे तो बोलना कि आप लोगों को जैसा अच्छा लगे वो लेकर दे देना लेकिन

ज्यादा खर्च मत करना क्योंकि ये जोड़ा एक बार ही डाला जाता है। जाते ही पैर छूना कहीं नमस्ते करके खड़ी रह जाए। घर का काम पूछे तो बोलना कि सारा आता है कहीं वहां बताने बैठ जाए कि रोटी जला देती हूं , कि या तो चूल्हे की लकड़ी संभलती है या फिर तवे की रोटी।

बहुतेरा समय मिलेगा सीखने को, सिखा देंगे। और वहां जाकर ज्यादा घूर घूर कर मत देखना, नजर नीचे करके रखना।

आगे पढ़ने जैसा कुछ न बोलना।

और सर पे पल्ला जरूर ढक कर रखना।

मेरी बहनें, कहने भर को सौतेली लेकिन असल में सगी सी, मुझसे ज्यादा उतावली थी कि दीदी तुझे तो अब नए कपड़े मिलेंगे और अब तुझे जमींदार के खेतो में भी नहीं काम करना पड़ेगा।

बस इसी तरह की सलाह मशवरे में अगला दिन बीता और परसों भी आ गया। मेरी मां का दिया एक गुलाबी सा कुर्ता, पजामी और दुपट्टा ओढ मैं बाप के पीछे साईकिल पर बैठ गई। शहर के लिए बस पड़ोस के गांव से ही होकर जाती थी। हम सुबह 6 बजे ही चल दिए थे। तीन घंटे के करीब हम अलाहाबाद पहुंच गए थे।

मेरी जिंदगी का असल भयानक दौर शुरू होने जा रहा था और मुझे कानों कान खबर न थी।

कुछ बुरा होने से पहले महसूस हो जाना जैसी बातें बस नाम भर की ही थी। मुझे ऐसा कुछ नहीं लगा। शायद मैं शादी के ख्वाबों में इतनी ज्यादा खोई हुई थी कि मन की किसी आवाज का कोई आभास ही न हुआ।

मैं बस सपने संजोए जा रही, मां और दादी की दी हुई सीख मन में दोहराए जा रही थी, कैसे बात करनी है, क्या जवाब देना है। मैं अपन मन में ही मगन थी।

अगर किसी छठी इंद्री ने मुझे चेताने की कोशिश भी की होगी तो भी मुझे कुछ पता न लगना था।

खैर हम अलाहाबाद पहुंच गए। इतनी भीड़ मैने पहली बार ही देखी थी शायद। कभी बड़े शहर आना ही नहीं हुआ।

पान थूकने से दीवारें ऐसी लाल मानो इनसे सट के किसी का कत्ल किया गया हो और जैसे खून का फव्वारा शरीर से निकल कर सीधा दीवार पर जा गिरा हो। अपना वजूद साबित करता हुआ। एक बड़े से स्पीकर से वाराणसी जाने की बस की घोषणा हो रही थी।

जगह जगह थूक दिए गए पान से फर्श भी लाल हो रखा था।

बसों पर सरकारी स्कीमों के पोस्टर लगे हुए।कुछ बिल्कुल जर्जर बसे भी काउंटर पर लगी हुई। एक जगह पोस्टर लगा हुआ कि खोई हुई मर्दाना ताकत पाएं। उस समय मुझे कोई एहसास नहीं था कि मर्दाना ताकत क्या होती है।उस समय मुझे बस इतना लगता था कि जो मर्द बस अपनी चलाते है और बीवी को मारते हैं वहीं मर्दाना ताकत है। लेकिन ये खोती कैसे है ? मेरा बाप तो कल भी वैसा था, खुद की न चलने पर मारपीट पर आने वाला, और आज भी वैसा ही है। इसकी मर्दाना ताकत क्यों नहीं खोई फिर आज तक ? और लोग इसका इलाज क्यों करते हैं ? क्या ये सही नहीं कि ये ताकत खो ही जाए ?

इसी वजह से तो ये आदमी लोग खुद को ज्यादा बड़ा समझते हैं ? और फिर ये ताकत की दवाई की जरूरत के पोस्टर स्त्रियों के लिए क्यों नहीं हैं ? बल्कि मेरी मां को तो इसकी ज्यादा जरूरत है। बाप की मार सहने के लिए।

बस इसी तरह से दिमाग घुमा जा रहा था कि आँखें पास वाली रेहड़ी पर टिक गई। भूख के मारे पेट में चूहे दौड़ रहे थे लेकिन बाप को बताऊं कैसे ? पैसे खर्च करने के मामले में ये हमेशा रोता ही है।

उसने मुझे देख लिया था शायद। बोला कि आज तू जी भर के खा सकती है तुझे जो भी लगे।

मुझे अजीब लगा लेकिन बोल दिया कि जलेबी खा लूं फिर ?

"हां हां खाओ "

मैने पेट भर खाया और रेहड़ी के बगल वाली बेंच पर आकर बैठ गई जहां सौतेला बाप भी बैठा था।

उस बेंच का ऊपरी हिस्सा मैल जमने के कारण काला हो चुका था लेकिन बैठने की जगह बिल्कुल साफ थी। शायद रोज़मर्रा की थकान उतारते समय लोग यहां का मैल भी साथ ले जाते थे। हर जगह अपनी कोई न कोई छाप छोड़ ही देती है। भले ही अच्छी हो या बुरी।

मैं अपने इन्हीं दार्शनिक या बेतुके विचारों में मगन थी कि बाप की आवाज सुनाई दो। " चलें अब "।

मैने थोड़ा सकुचाते हुए हामी भरी।

अब थोड़ा डर सा लगने लग गया था

पता नहीं कैसे क्या होगा।

लड़का कैसा दिखता होगा

मां की बातें पता नहीं याद हैं या नहीं

पता नहीं कैसी लग रही हूं

कहीं अब लड़का अच्छा बने और बाद में मारपीट करे ?

कहीं रोटी ही न बनवा के देखने लग जाएं

शादी है क्या फिर ?

रोटी बनाना और सजना संवारना ?

कभी कभी एक दो किताबें पढ़ने का मन हो जाया करता था। अपनी हिंदी की पुस्तक की सारी कहानियां मैं सत्र शुरू होने से पहले ही पढ़ लेती थी

कलास में कुछ लड़कियां थोड़े ठीक घर से थीं। वो कई बार अख़बार लेके आती तो मैं वो सारा अखबार भी पढ़ लेती।

उन्हें अभिव्यक्ति वाला पृष्ठ नहीं भाता था लेकिन मुझे सबसे ज्यादा वही भाता।

कई बार उसमें बड़े गहन विचारों वाली बातें आती।

जात पात

हिन्दू मुस्लिम

अमीर गरीब

अनपढ़ साक्षर

स्त्री पुरुष

मुझे पता लगा कि संविधान में सबके लिए बराबर अधिकार बेशक हैं लेकिन उन्हें पूर्ण रूप से कोई नहीं मानता

एक दिन मैने पढ़ा कि गटर साफ करते करते एक आदमी की मौत हो गई। निचली जाति का था। बस हम जैसे लोग ही ऐसे काम करते हैं।

लेकिन क्यों?

क्या रेत उठाने की मशीन नहीं बनी ?

या रोटी बनाने की ?

या कपड़े धोने की ?

कैसे कोई इंसान पूरे शहर की गंदगी में उतर जाता है। सिर्फ दो वक्त की रोटी के लिए ?

क्या रोटियां इतनी महंगी हैं कि जान की परवाह छोड़ दी जाए ?

शायद बच्चों के स्कूल महंगे हैं।

लेकिन इन महंगे सकूलों और अच्छी शिक्षा के लिए उन बच्चों के मां बाप को एक नहीं शहर के कई गटर साफ करने होंगे

और वो सब साफ करने के बाद भी कोई गारंटी नहीं कि वो बच्चों को अच्छे स्कूल में भेज पाएंगे या नहीं।

और भेज भी दिया तो उन गरीबों को उन महंगे स्कूल की शर्ते और खर्चे पूरे करने के लिए शायद दुनिया भर के ही गटर साफ करने पड़ जायेगे

अगर किस्मत से यह सब उन्होंने कर भी लिया तो उनके खाने के ही लाले पड़ जाएंगे

इतना सब सिर्फ एक अच्छे स्कूल के लिए ?

नहीं

सिर्फ इसलिए कि अच्छे स्कूल महंगे होते हैं और वे गरीबों के लिए नहीं होते

जब मैने अखबार में ये पढ़ा तो मेरी आँखें जैसे खुल सी गई

कोई सवाल पूछ रहा था और वो भी हम जैसों के लिए ?

और इतनी बुद्धिमता से ? इतने हक से ?

उस लेखक ने इन चीजों को मूलभुत कहा था

मुझे आज भी याद है उस समय मेरे रौंगटे खड़े हो गए थे। जैसे मेरे ज्ञान के द्वार कहीं खुल गए हैं जो तब तक बंद थे।एक बार मैने पढ़ा कि कैसे कुछ हिन्दुओं ने दो मुसलमानों की पीट पीटकर हत्या कर दी।

ये सब ज्ञान मुझे एक अजीब सा सुकून और हिम्मत देता था।

खैर, अपनी कहानी पर लौटती हूं।

मेरे ये सब सुनने से कुछ बदल थोड़ी न जाएगा भला।

बस, मेरे मन के एक कोने मे यह भी कहीं एक छोटा सा डर था कि मुझे अखबार या कहानियां न पढ़ने दिया गया तो ?

इसी उधेड़बुन में हम मीरगंज के चौराहे पर पहुंच गए। रास्ता दस मिनट का भी नहीं था शायद। मुझे आज भी मेरे जेहन में वो जगह याद है, जैसे कल की ही बात हो।सुबह लगभग १० का समय हो चला था।

एक तंग सी सड़क।

आस पास चाय, कपड़े, लेडीज समान, एकाध मेडिकल स्टोर, ढेर सारे ब्यूटी पार्लर और उनके बीच बेतरतीबी से किसी तरह जगह बनाती फूलों की दुकानें। पान से लाल सड़कें, बाजार की एक अजीब सी खुशबु और अदरक वाली चाय की खुशबु दोनों एक दूसरे में रम सी गई थी और एक नई तरह की ही खुशबू बना रही थी।

थोड़ी बहुत भीड़ थी। कहीं दूर के एक मंदिर से भजन की आवाज आ रही थी जो दुकानों में चल रहे भजनों के साथ ही मिल चुकी थी।

लोग अपनी दुकानें साफ करने में लगे थे, रिक्शे वाले सवारी ढ़ो रहे थे, दुकानों के ऊपर भी कमरे बने हुए थें।

किसी किसी कमरे की खिड़की में महिलाएं बैठी हुई अपने गीले बाल सुखा रही थी।

एक महिला की नजर मुझ पर पड़ी और थम गई। वो बस देख रही थी, बिना किसी भाव के ।लगभग एक सूनेपन के साथ ही। मानो कुछ पूछ ही रही हो। लेकिन मैने एकदम नजर फेर ली और फिर उसकी तरफ दोबारा मूड के नहीं देखा।

मेरा बाप मुझे दुकान से सटी एक संकरी सी गली में ले गया उस गली के ऊपर तारो का एक जंजाल सा बन गया था। बहुत भिड़ी थी वह गली, लाल पान की वो दुर्गंध जो मुझे मेरे बाप से आती तो वो इस गली की हर दीवार से आ रही थी

कुछ बच्चे बाल्टी उठाए सरकारी नलकों से पानी भर रहे थे।

उस गली में थोड़ा चलने के बाद ही एक मकान आया, थोड़ा बड़ा , नीचे ३ दुकान थी और मकान ऊपर ही बना हुआ था। हम सीधा संकरी सीढ़ियां चढ़ कर मकान में दाखिल हुए।

सीढ़ियां खत्म होते ही एक छोटा सा न के बराबर बरामदा था जिसकी एक तरफ वही संकरी सीढ़ियां थी जिनसे हम आए थे, सीढ़ियों से सटा कर तीन कमरे बने थे, ठीक दुकानों के ऊपर लेकिन सीढ़ियां निकल जाने से थोड़े छोटे हो गए थे। उस न के समान बरामदे के उस पर भी तीन कमरे बने थे । उसी बरामदे में से लोहे की बहुत संकरी सीढ़ियां ऊपर जा रही थी।

कुल मिलाकर छह कमरे थे इस स्तर पर थे और ऊपर से आती हुई महिलाओं की आवाज़ों से मालूम पड़ता था कि शायद वहां भी कमरे बने हुए हैं। देखने से घर जैसा तो नहीं लगता था यह। घर में इतने कमरे थोड़ी होते हैं और इतनी

महिलाएं और बच्चे ? मैं अपने बाप से कुछ पूछती इससे पहले ही वह मुझे सीढ़ियों के ठीक सामने बने कमरे में ले गया।

मुझे अब अजीब सा लगने लगा था। हम लोग उस कमरे के अंदर ही थे कि मैने एक औरत की आवाज सुनी

"एक नई लड़की आई है"बोला उसने थोड़ा आराम से ही था लेकिन मुझे सुन गया। मैने मुड़कर देखा तो पाया कि उसकी आवाज सुनकर बगल वाले कमरे से एक और औरत निकली और फिर धीरे धीरे हर कमरे से औरत और कुल मिलाकर २_५ बच्चे भी मुझे देखने लगे।

उनकी आंखों में उदासी थी लेकिन चेहरे पर उस उदासी का इतना प्रकोप नहीं था जितना उनकी आंखों में था।

"यहां क्या सिनेमा चल रहा ?" जिस कमरे में हम अभी दाखिल हुए थे वहां से अधेड़ उमर की महिला ने कोने में लगे लकड़ी के छोटे से मंदिर में अगरबत्ती लगाते हुए कहा। उसकी आवाज में रुतबा और गुमान दोनों थे। उसकी आवाज इतनी गहरी थी कि कमरे के बाहर लगी भीड़ एकदम तीतर बीतर हो गई।

उस कमरे में एक बेड था, वहां एक बालकनी थी, छोटी ही, जिसे एक पर्दे से ढक दिया गया था, एक अलमारी थी , एक ड्रेसिंग और उस ड्रेसिंग के ठीक सामने एक मेज थी जो कमरे में घुसते ही दिखती थी। इतना सब सामान आने से वहां दो आदमियों के खड़े होने की जगह भी मुश्किल बचती थी।

मेज के एक तरफ दो कुर्सियां रखी थी।

मेरा बाप और मैं हमारे पास पड़ी कुर्सियों पर बैठ गए।

उस महिला ने अपनी पूजा पूरी की और बेड पर ही चौकड़ी मार के बैठ गई।

बेडौल सा शरीर, लंबे बाल लेकिन बीच बीच से इतने ज्यादा सफेद जैसे चांदी हो, गेहूंआ सा रंग और एक बड़े से गले का सूट डाले, नीले रंग का, हाथ में सोने के कड़े थे या पता नहीं नकली ही थे, लग तो सोना ही रहा था, मां बताती थी कि सोने में बहुत चमक होती है लेकिन मैने देखा नहीं थी कभी ।मां के पास जो थोड़ा बहुत था वह मेरे सगे बाप की मौत के समय बिक गया था ।

उस महिला ने कान में भी शायद सोना ही डाला था । उसके कानों के छेद ज्यादा भारी झुमके या बलिया पहनने से बड़े हो गए थे और कान कुछ लटक से गए थे ।

माथे पर एक मोटी सी बिंदी उसे थोड़ा बुरा सा बना रही थी। मुझे छोटी बिंदिया पसंद थी ।

"लड़की यह है " उसने एक भरी आवाज में पूछा ।

"हां, अभी पंद्रह की ही है, एक महीना पहले ही हुई " मेरे बाप ने इतनी विनम्रता से जवाब दिया जो मैंने मेरी मां या मेरी दादी के लिए कभी नहीं देखी ।

मुझे लड़का तो यहां दिख नहीं रहा था और इतनी औरतें और इस तरह का माहौल देख कर मैं सोचे जा रही थी कि यह किस तरह का घर है ।

"इसके बीस दूंगी, इससे ऊपर एक भी नहीं " उस महिला ने मुझे ऊपर से नीचे तक देखकर कहा ।

मैं कुछ बोल पाती इससे पहले ही मेरा बाप बोल पड़ा

"मैडम जी, ५ तो दलाल ही ले लेगा, मुझे क्या बचेगा "?

"देख, तेरा बचना या न बचना ये मेरा काम नहीं है, मुझे जो इसके ऊपर काम करना पड़ेगा उसका खर्चा क्या तू देगा, शक्ल देख इसकी, सांवला रंग है, नैन नक्ष कोई नहीं देखता, रंग देखते हैं और कमजोर देख कितनी है जैसे अभी

हड्डी टूट के गिर जाएगी, इसके २० ही दूंगी, लेने हैं तो ले नहीं तो ले जा इसे, मरी सी बिल्ली लाके खड़ी कर दी है, यहां ये एक रात भी नहीं टिक पाएगी, मैं बीस हजार भी ज्यादा ही दे रही तुझे इसके " उस महिला ने अंतिम लहजे में और इस आवाज में कहा कि उसकी ही चलेगी और इस जगह पर बस वही श्रेष्ठ है।

मेरा बाप उसकी दमदार आवाज के सामने चुप हो गया और वो औरत बेड से उठकर अपनी अलमारी की तरफ बढ़ गई।

इसी बीच मैने अपने बाप से पूछ लिया।

"तुम किस चीज के पैसे ले रहे मुझे दिखाकर ?"

"आज से तू यहीं रहेगी, इसे ही अपना घर मानना, कब तक अपनी मां पर बोझ बनेगी, इन पैसों के बदले तेरे बहन भाइयों का खर्च चल जाएगा, तुझे बस यहां काम करना है और कुछ नहीं " उसने एक ही सांस में हौले से इतनी बात कह दी।

"तो शादी की बात झूठी थी ?" मैंने उस नफरत और गुस्से को दबाते हुए पूछा जो मेरे मन में उसके लिए उमड़ रही थी।

वो महिला हमारी बाते सुन रही थी शायद, उसने मेरे बाप की तरफ देखा और बोला, "तू इसको समझा के जाना, मेरे को यहां फालतू की चिक चिक नहीं चाहिए, " इतना कहकर वह पैसे मेरे बाप के सामने मेज पर फेक कर बिन कुछ कहे सुने बाहर चली गई।

मैने अपनी आंखों में आए आंसुओं को पीते हुए बाप की तरफ देखा, अगर मैं एक बार भी रोई तो ये मुझ पर हावी पड़ जाएगा, मुझ पता था।

बाप ने सबसे पहले तो पैसे उठाए, दो बार गिने और अपनी जेब में ठुस लिए।

फिर उसने पान से संदे और सड़े दांत दिखाते हुए बोला, " हां, झूठी थी शादी की बात। क्योंकि तेरी मां तुझे कहीं नहीं भेजती फिर। और तू कितनी स्वार्थी है? अपने भाई बहनों के लिए इतना नहीं कर सकती ? अपनी मां के लिए भी नहीं ? यहां काम करेगी, दो पैसे अपनी मां को भेजेगी, वो भी खुश होगी, उसकी भी उमर हो चली है, वो कब तक मजदूरी करेगी ? और रही चिंता करने की बात, तो यहां भरपेट खाना मिलता है, नीचे बाजार है, और रोजाना के पैसे मिलेगे। तेरी मां से मैं जाते ही बात करा दूंगा। तू बड़ी हो गई है अब कमाना तो चाहिए, दस पढ़ चुकी है " उसकी सारी बातें मुझे सही भी लगी, मां कब तक मजदूरी करेगी। लेकिन फिर भी काम क्या करना होगा और कपड़े लत्ते तो मैं लेकर ही नहीं आई

और उसे बताना तो चाहिए ही था। मां को मैं मना ही लेती, झूठ बोलने की क्या जरूरत थी।

और ये पैसे भी पता नहीं ये मां तक पहुंचेंगे भी या नहीं। मैं कुछ बोल पाती इससे पहले ही वो औरत आ गई और मेरा बाप जाने के लिए खड़ा हो गया।

"मैं यहां कल आ जाऊंगी लेकिन आज तो घर ही जाऊंगी, मां को बता आऊंगी कि अब मैं भी काम कर लूंगी। " मैने लगभग मिन्नतें मांगते हुए बाप को बोला।

"तेरा बाप बता देगा जो भी बताना है, मैने पैसे दिए हैं तेरे, अब तेरी नहीं मेरी मर्जी चलेगी, तू कहीं नहीं जाएगी जब तक मैं अपने पैसे पूरे न कर लू। " उस महिला ने तीखी नजरों से मुझे देखते हुए कहा।

"तू चिंता न कर, मैं घर पहुंच कर तेरी मां से बात करा दूंगा।" बाप ने आश्वासन दिया और वो इस तरह भागा जैसे चोर चोरी करके भागता है। दबे पांव, बिना पीछे देखे। और बस इसी तरह वो मुझे इन अनजान लोगों के बीच छोड़ गया। पंद्रह बीस मिनट में ही। बिना कुछ खास बताए। झूठ बोलकर।

"चल तुझे कमरा दिखा दूं " बोलते हुए वो महिला मेरा हाथ पकड़कर उन लोहे की संकरी सीढ़ियों से ऊपर ले गई। ऊपर का हिस्सा भी ठीक नीचे की ही तरह था। उसने मुझे एक कमरे में ले जाकर खड़ा कर दिया।कमरा इतना छोटा कि चार आदमी एकसाथ खड़े हो जाएं तो वहां भीड़ लग जाए।उस कमरे में एक तख्त पड़ा था, उसपे एक फटा सा गद्दा और उस गद्दे पर एक सड़ी सी चद्दर बिछी थी। कमरे की दीवारें पीली रंग की और शायद एक बार पेंट के सिवाय किसी ने भी दोबारा पेंट करने की जहमत नहीं की थी। पीला रंग तो उसमें कहीं कहीं दिख रहा था। बस मैल ही दिखे जा रहा था, काले रंग का, जैसे बरसो से जमा हुआ हो, दीवार पर नीचे की तरफ पान थूकने से लाल निशान बन चले थे। तख्त से लगी एक मेज रखी थी, उसपे एक छोटा सा पंखा और एक कोने में छोटी सी अलमारी बनी थी। कमरे की दाहिने और एक इतना छोटा गुसलखाना कि एक आदमी मुश्किल से नहा धो सके। उस गुसलखाने से इतनी तेज दुर्गंध आ रही थी कि वहां खड़ा न हुआ जाए। पूरे कमरे के अंदर ही उसकी दुर्गंध थी। छत भी ज्यादा ऊंची न थी।

किसी भी इंसान से उस गंदे कमरे में एक मिनट न रुका जाए।

"तुझे आज से यहीं रहना है, गुसलखाना साथ में है, खाना नीचे की रसोई में खर्चा देकर बना लेना या फिर बाहर से मंगवा लेना।यहां छोटू सबके बाहर के काम करता है। शुरू के कपड़े लत्ते और खाने का खर्चा मैं दे दूंगी, लेकिन बाद में सूत समेत वापिस करना। " उस महिला ने बिना किसी आत्मीयता के साथ कहा।

"लेकिन यह कमरा तो बेहद गंदा है " मैने कहा।

" तू कोई शहजादी नहीं है, धंधेवाली बनेगी और भूल मत मैने पैसे देकर खरीदा है तुझे। गांव में बंधुआ मजदूर तो जानती होगी न तू ? तू वही है यहां। बस यहां तेरी देह ही तेरी मजदूरी है। और मुझे ज्यादा चिक चिक नहीं चाहिए।

साफ शब्दों में कहे देती हूं, तुझे अपना जिस्म बेच कर पैसे कमाने है। और भागने की सोचना भी मत। यहां भागने का कोई रास्ता नहीं है। जब तक तेरी लागत और उससे ऊपर थोड़ा बहुत फायदा नहीं हो जाता मैं यहां से तुझे कहीं नहीं जाने दूंगी।" उस महिला ने मुझे एक कड़ी समझाने वाली लय में बोला और फिर पास के कमरे में चली गई।

मैं उस कमरे में खड़ी देखती रही, कमरे को नहीं, तख्त को नहीं, उस मैली चद्दर को भी नहीं, शून्य में, उस महिला द्वारा बोले गए शब्दों को तौलती रही। मुझे स्त्री पुरुष संबंधों के बारे में कुछ खास पता न था। इतना तो था कि गले मिलते हैं, चुम्बन होता है, प्यार होता है, बालों से खेला जाता है लेकिन देह की मजदूरी क्या होती है मुझे कुछ पता न था। स्कूल की कुछ सहेलियां थी जिनकी शादी हो चुकी थी लेकिन कभी उन्होंने भी देह मजदूरी की बात न की थी। और धंधेवाली शब्द शायद मैने एक दो बार ही सुना होगा। गांव में ही दादी एक औरत को धंधेवाली बोलती थी, उनकी उससे कभी बनी नहीं और मेरी दादी अपने पे आती तो हर बुरी से बुरी गाली देती थी।

वहां से मुझे पता था कि धंधेवाली किसी गैर पुरुष के साथ उठ बैठ किया करती है। लेकिन यह सब मुझसे क्यों कराया जा रहा ? "क्योंकि तेरा बाप तुझे यहां बेच गया था " मेरे अंतर्मन से आवाज आई।

मैं शून्य हो गई थी। मुझे सब समझ आ गया था। क्यों मेरे बाप ने पैसे लिए, क्यों उसने यहां छोड़ दिया और क्यों वो चोरों की तरह भाग गया। मेरा रोने का मन हो रहा था। और उस गंदे कमरे में रहने का मन तो कतई नहीं था। पता नहीं क्या सोचकर मैं उस कमरे से बाहर निकली और तेजी से नीचे जाने लगी। निचली मंजिल पे पहुंच कर बरामदा तय ही करने वाली थी कि उस महिला की आवाज सुनाई दी _" लगता है मेरी बात तेरे मोटे दिमाग में गई नहीं"। मैने पलट कर देखा, वो महिला मेरे सामने खड़ी थी, मैं कुछ बोल पाती

इससे पहले गाल पर इतनी जोर से एक थप्पड़ मारा कि मेरा सर चकरा गया और मैं उस बरामदे में ही बैठ गई।

मेरे आंसू रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। और मेरा दिमाग सुन्न हो चला था।

"ए रेखा, लेकर जा इसे, कहां मर गई थी तू ? तेरे को बोल के आई थी न मैं कि इसका ध्यान रखना, तौर तरीके सिखा देना, फिर कहां मर गई थी तू ? " उसने आँखें लाल करते हुए एक लड़की से पूछा जो ऊपर वाली सीढ़ियों से नीचे उतर रही थी। एक क्षण के लिए उस लड़की की नजरें मुझसे मिली। वह भी डरी सी हुई थी। होगी अठारह साल के लगभग। मुझसे तो बड़ी थी।

"जी मालकिन, मैं …मैं …मैं गुसलखाने चली गई थी, अभी लेकर जाती हूं इसको " इतना कहकर उस लड़की ने मेरा हाथ पकड़ा और वापिस दूसरी मंजिल की सीढ़ियों की ओर चल दी।

"दोबारा ऐसी गलती हुई तो तुम दोनों की टांगे तोड़ दूंगी मैं, कान खोल के सुन लो " पीछे से मालकिन की आवाज सुनाई दी।

"नाम क्या है तेरा ? " रेखा ने मुझसे थोड़े अपनत्व से पूछा।

"कमला"

"देख कमला, तू कोशिश भी करेगी तो भी यहां से भाग न पाएगी " उसने मुझे समझाते हुए बोला। " कहां से भागेगी और ? ये नीचे जो दुकानें तुझे दिख रही हैं इनके ज्यादातर दुकानदार इन कोठों के मकान मालिक हैं, तुझे भागता देख सीधा मकान मालकिन को इतिला करेंगे और जो ये रिक्शे वाले, आम से घूमते लोग, कभी कोई दुकानदार, सारे तो नहीं लेकिन ज्यादातर दलाल हैं। उनको हर कोठे की लड़की का पता है, कौन नई आई है, कौन पुरानी है और कौन भागने की कोशिश कर सकती है या कर रही है। वो लोग भी मालकिन को

खबर कर देते है या खुद ही वापिस छोड़ जाते हैं, पैसों के लिए। और अगर तू छत से ही भागने की कोशिश का सोच रही तो ये जो सामने वाले मकान की बालकनी जो अपनी बालकनी से मिल रही न, वो भी कोठा ही है। तो कहां जाएगी ? और सबसे बड़ी बात, मालकिन की नजर हर जगह हर लड़की पर रहती है। तू अगर दोबारा ऐसा कुछ करती पकड़ी गई तो एक थप्पड़ में कम नहीं चलेगा। मैं भी यह सब करके देख चुकी हूं। चल अब अपना कमरा संभाल ले ."

"कोई फायदा नहीं है ऐसी नाकाम कोशिशों का।"

उसने एक शून्य भाव से सब कह दिया जैसे वह हार गई हो।

"कुछ खाएगी " उसने पूछा।

मैने सिर हिला कर मना कर दिया। "चल थोड़ी देर मेरे कमरे में आजा, मैं साथ मिलकर कमरा साफ करा दूंगी " उसने मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा।

उसका कमरा भी हूबहू मेरे जैसा ही था। चद्दर कम गंदी थी और वो दुर्गंध भी इतनी ज्यादा नहीं थी। लेकिन रहने लायक वो अब भी नहीं था। गांव में हमारी बेशक झोपडी ही थी लेकिन मां साफ सफाई की पूरी पक्की थी। लिप पोत के झोपडी एकदम साफ रखती। सारे बर्तन एक कोने मे बने चौके पर करीने से रखकर। कपड़ों से भरा झोला हमेशा तख्त के नीचे और कुछ कपड़े खूटियों पर।

इस तरह की गंदगी मैने बस यहीं देखी है।

उसने मुझे तख्त पर बैठने का बोला और मेरे बगल में आकर बैठ गई।

"देख, तुझे अपने लिए कोई दूसरा नाम देखना होगा। और तुझे आज ही रात या कल तक पहला ग्राहक लेना पड़ेगा। शुरू में थोड़ा दर्द होता है, घिन भी

आती है, आदमी मारने का भी मन करता है, खुद मरने का भी करता है, लेकिन धीरे धीरे इन चीजों की आदत होती चली जाती है। "

"और तू यह न सोचना कि तुझे यहां फ्री में रहने दिया जाएगा। तुझे कमरे का किराया भी देना पड़ेगा। दिन के हिसाब से। दलाल का कमीशन भी, मालकिन का भी और मकान मालिक का भी। ये लोग निकालेंगे नहीं तूने किराए भाड़ा नहीं दिया तो बल्कि वसूल करेंगे। किसी भी ग्राहक को भेजकर। खुद से करेगी, अगर किस्मत सही रही तो थोड़े बहुत ढंग के ग्राहक मिलने की उम्मीद तो है।

रेखा ने मुझे समझाते हुए कहा।

"चल तेरा कमरा थोड़ा साफ करा देती हूं " कहकर वह उठ खड़ी हुई और बाहर बालकनी में पड़ी झाड़ू उठा लाई।

वो कमरा साफ करते करते मुझे कई बार उल्टी आने को हुई।पेशाब की बेइंतहा दुर्गंध थी गुसलखाने में। और कई पलास्टिक के छोटे छोटे पैकेट थे।

"ये कंडोम हैं, इनका इस्तेमाल जरूर करना, नहीं तो बीमारी हो जाएगी। एक रात में तुझे सब पता लग जाएगा।तू अभी डर मत। शुरू में लगता है लेकिन बाद में आदत हो जाती है " उसने मेरी आंखों में देखते हु कहा।

कमरा साफ करके हम उस गंदे तख्त पर बैठे ही थे कि एक और लड़की आ गई, हाथ में कुछ कपड़े लिए, माया नाम था उसका।

" मालकिन ने दिए हैं, आज शाम ही इसको तैयार होने को बोला है " उसने मेरी तरफ देखते हुए बोला।

"क्या नाम है तेरा ? " उसने पूछा

"बबीता " रेखा ने उसको बोल दिया और मैं उस दिन से बबीता ही हो गई।

"यहां कैसे आई तू ? माया ने पूछा जो शायद बीस इक्कीस साल की होगी।

"इसका बाप बेचकर गया इसे " रेखा ने उसको कहा।

"सगा नहीं, सौतेला है " मैने उत्तर दिया।

"सगे भी बेच जाते हैं " माया ने मेरा इस पाशविक दुनिया से परिचय कराते हुए कहा।

"चल तू नहा ले, थोड़ा आराम कर और ये कपड़े पहन लेना, रेखा से थोड़ा बहुत मैकअप का सामान ले लेना और खुशबू जरूर लगा लेना, मालकिन ने आज ही ग्राहक भेजने की बोली है। " माया ने एकटक मुझे देखते हुए बोला। फिर वो थोड़ पास आई और मेरे कंधों पर हाथ रखकर बोली " तू अकेली नहीं है, हम सब के साथ ये हो चुका है। लेकिन अब बस यहीं जीवन है। " बोलकर वह जाने के लिए मुड़ी।

"इसको कपड़ा दे देना और तेल भी " वह रेखा को बोलकर वहां से निकल गई।

"चल नहा ले, गुसलखाने में ही टूंटी है लेकिन पानी कभी कभी ही आता है। पहले बाल्टी भरना फिर ही नहाना। " रेखा भी चली गई और मैं उस तख्त पर बैठी आने वाले बुरे समय का इंतजार करने लग गई।

जैसे तैसे उस गुसलखाने में नहा कर आई वो कपड़े पहने जो माया देकर गई थी और रेखा के कमरे में चली गई। उसने मुझे थोड़ा बहुत मैकअप का बताया, मेरा किया, लिपस्टिक लगाई, खुशबू लगाई और हम फिर ऐसे ही बैठ गए। शाम के चार बज गए थे। और जैसे जैसे पांच छह का समय नजदीक आ रहा था मुझे रेखा की बात याद आ जाती कि इसी टाइम ग्राहक शुरू होते हैं। जैसे जैसे शाम नजदीक आती जाती मुझे मेरी मां की याद ओर तेजी से आने लगती

जा रही थी। रेखा तैयार होने बैठ गई और उसके तख्त के एक कोने पर बैठी मैं मन ही मन सिसक सिसकर रोए जा रही थी

मां को याद करके, बाप को मरने की बद्दुआएं देते हुए, उसने मां को सच तो नहीं बताया होगा यह मुझे विश्वाश था। पता नहीं क्या बहाना बनाया होगा।

मुझे अपना स्कूल, गांव, झोपडी, दादी, भाई बहन, सब याद आ रहे थे। रेखा ने एक बार तो मेरी तरफ देखा और फिर अपनी लाली लिपिस्टिक में मशगूल हो गई।

मैने भी उसकी खैरियत मानी जो उसने मुझे नहीं टोका।

उसने छोटू से दो कप चाय और एक बिस्कुट का पैकेट मंगवाया। एक चाय और बिस्किट मुझे पकड़ा वह शीशे के सामने रखी कुर्सी पर बैठ गई।

" कुछ खाले, ऐसे कब तक काम चलाएगी "।

मैने चाय को ऐसे पकड़ा जैसे बस वहीं जीवन का आधार बन गई हो। बिस्किट मेरे हलक से नीचे नहीं गया।

"मुझे नीचे जाना है और वहीं बैठना है रात तक, ताकि कोई ग्राहक मिल जाए। तू अपने कमरे में ही रहना, मालकिन खुद ही भेज देगी किसी ग्राहक को। अगर नहीं भेजा तो तू शुक्र मनाना। नई लड़कियों की डिमांड ज्यादा है तो उनको मालकिन ही देखती है। पैसे भी ज्यादा मिलते हैं। और कुछ जरूरत लगे तो किसी को भी कह देना। ज्यादातर हम लोग एक दूसरे के काम आ ही जाते हैं। और ग्राहक से ज्यादा बात मत करना। ये हमारा जिस्म तो खाते हैं लेकिन हमारे सगे नहीं हैं। तू अगर उनको यहां से बाहर निकल देने की गुहार लगाएगी तो हो सकता है वो मालकिन को बता दें और तुझे खाना भी नसीब न हो। बस उस प्रक्रिया के दौरान अपनी आंख बंद करके रखना और सहनशक्ति को बनाए रखना "

"बाकी सब किस्मत का है " यह बोलकर वह निकल गई और मैं उसके तख्त पर बैठी रह गई।

मैं अपने कमरे में आई और रेखा की दी एक नई चद्दर उस गंदे से पड़े गड्ढे पर बिछाई और रोने लग गई। बिना किसी आवाज के। आंखों से पानी की बूंदे स्वत ही चद्दर को भिगोए जा रही थी और मेरा मन एक बार फिर अपने गांव की तरफ चला गया था।

मैं मन ही मन बस यहीं दुआ करती रही कि की आदमी न मिले मालकिन को। लेकिन भला ऐसा भी कभी हुआ है ?

कौनसा कोठा ऐसा होगा जिसपर एक पंद्रह साल की लड़की हो, नई हो और उसके ग्राहक न आए?

बाहर अंधेरा हो चला था और मेरे दरवाजे के बाहर से मालकिन की आवाज आई।

"लड़की, मर गई है क्या ? दरवाजा खोल। "

मेरा मन तो हुआ कि न खोलूं,एक दो मिनट खोला भी नहीं। लेकिन वो दरवाजा ऐसा नहीं था कि तोड़ा न जा सके। आधे से ज्यादा तो दीमक ने खोखला कर रखा था। हल्का सा वजन भी मुश्किल ही ले सकता था। कुछ दरवाजा और कुछ सुबह के थप्पड़ की याद ने मुझसे कुंडी खुलवा ही दी।

मालकिन थोड़ा हाँफ रही थी, शायद सीढ़ियां चढ़ने से।

"अगली बार से दरवाजा खोलने में देर न करना " उसने सख्त हिदायत के लहजे में बोला।

जी कहकर मैं थोड़ा दरवाजे की ओट में हो गई जैसे ये गला सा दरवाजा मुझे आने वाले समय की चोट से बचा लेगा।

"एक ग्राहक आया है, अच्छे पैसे दे रहा है, ज्यादा नखरे मत करना " इतना कहकर वह बाहर गई और लगभग एक चालीस साल के आदमी को अंदर भेज दिया।

उस आदमी ने अन्दर आकर कुंडी लगा दी।

मैं डर के मारे तख्त के पास एक कोने में खड़ी हो गई।

"मुझे जाने दो " मैने उससे गुहार लगाई।

"मैं यह सब मर्जी से नहीं कर रही हूं, मुझे मेरे बाप ने जबरदस्ती यहां बेच दिया है।तुम तो भले घर के मालूम पड़ते हो, मुझे यहां से जाने दो, तुम्हे भगवान का वास्ता। " मैं गिड़गिड़ाए जा रही थी।

"देख, मुझे तेरे से कोई मतलब नहीं है। तेरी मालकिन ने नई लड़की बोलकर मुझसे पूरे एक हजार रूपए लिए हैं और मैने तुझे पूरे तीन घंटे के लिए खरीदा है। अपने पैसे तो मैं वसूल करूंगा। हां उसके बाद तू कहे तो तेरी मालकिन से मैं तेरी रिहाई के लिए बात कर लूंगा।" उस आदमी ने बड़ी बेशर्मी के साथ मुझे घूरते हुए कहा।

"तुम तीन घंटे बैठ जाओ यही लेकिन भगवान के लिए मुझसे दूर रहो" मैने मिन्नत की।

"मैं तुझे पागल दिखता हूं या मेरा दिमाग खराब है ? फालतू की चिक चिक मत कर और कपड़े उतार। "

"मैं नहीं उतारूंगी " मैने अपने दुपट्टे को कसकर पकड़ते हुए कहा।

वह आदमी आगे आया और पूरी ताकत के साथ उसने मेरे दुपट्टे को उतर कर फेंक दिया।

मेरा कुर्ता निकालने की जद्दोजहद में वह सफलों हो ही गया। मैं पंद्रह साल की। एक आदमी के आगे मेरी क्या ही चलती।

तीन घंटे तक उसने मुझे नोच नोचकर खाया। मेरे जिस्म पर जख्म हो गए थे। दर्द असहनीय था। मैं लाश बन गई थी। वो अपना काम निपटाए जा रहा था और मैं लाश की तरह पड़ी रोए जा रही थी।

मन हो रहा था कि इस आदमी को अभी मार दूं। लेकिन कैसे ?

सोचा कि खुद को ही खत्म कर लूंगी। ऐसी जिंदगी से अच्छा है मर जाना।

तीन घंटे वो कभी रुक जाता कभी अपने घर की अजीब सी बाते बताने लग जाता तो कभी महिलाओं में उसकी पसंद नापसन्द। कायदे से देखूं तो मेरी उम्र की उसकी बेटी होगी शायद। क्या मुंह दिखाएगा वो उसे घर जाकर ?

कितना पाशविक है न ये समाज। खैर जैसे तैसे वो तीन घंटे बीते। वो चला गया और मैं बिस्तर में ही पड़ी रही। निर्वस्त्र। दरवाजा खुला। अब क्यों बंद करूं मैं दरवाजा ? अब मुझे किस चीज का डर है ? जो डर था उससे तो मैं गुजर ही चुकी थीं।

मैं जोर जोर से चिल्लाकर रोने लगी। मैं अंधेरे में ही पड़ी थी। यूं हो रखा था कि अभी ये जमीन मुझे निगल जाए। मुझे खुद के शरीर से ही नफरत हो चली थी और मन हो रहा था कि पूरी की पूरी चमड़ी ही उतार दूं। ताकि उस आदमी का कोई सबूत ही न रह जाए इस शरीर पर। मैं अपने आपको खरोंचने लगी और जोर जोर से रोने लगी।

इतने में दरवाजा पर दस्तक हुई।

"कमला एरर बबीता " रेखा थी वह।

वह अंदर आई, मेरे ऊपर एक गंदा सा कंबल डाला और लाइट जगा के मेरे सिरहाने बैठ गई। मेरे बालों को सहलाने लगी। मुझे और भी रोना आया।

दस मिनिट तक हम ऐसे ही बैठे रहे, बिना कुछ बोले। कई बार चुप्पी में भी आत्मीयता छिपी होती है। और मुझे वह रेखा में मिल रही थी।

"तू नहा ले अब, मैं कुछ खाने का देखती हूं" उसमें कहा।

"मुझे भूख नहीं" मैने सच्चाई बताई।

"देख, यहां तेरे लिए कोई नहीं बैठा है, मैं भी नहीं" उसने मेरे बाल सहलाते हुए कहा।

"मैं भी यहां तेरी ही उम्र की आ गई थी। मेरा मामा मुझे यहां बेच गया था। बाप चल बसा था तो मां को दादी ने घर से निकल दिया, बेचारी मायके आई तो मामा मामी ने नौकरों की तरह ही रखा। मुझे काम दिलाने का बोलकर मामा ने मुझे यहां कोठे पर ही लाकर बैठा दिया। शुरू में लगा मुझे भी कि भाग जाऊ लेकिन जाती कहां ? मेरी मां पर बोझ नहीं बनना था मुझे। " रेखा ने अधमरे से स्वर में कहा।

मैं बैठ गई और उसके हाथों को अपने हाथ में लेकर थोड़ कसकर पकड़ लिया। बस इतना ही कर सकती थी मैं।

"चल तू नहा कर आजा, मैं खाना मंगवा लेती हूं। " कहकर वह अपने कमरे में चली गई।

जैसे तैसे मैं उठी और गुसलखाने में जाकर बैठ गई। वहां उस आदमी ने इस्तेमाल किए कंडोम ऐसे ही फेंक रखे थे। मुझे बहुत घिन आ रही थी। लेकिन मैके उन्हें उठाया नहीं। बस बैठी देखती रही। बाल्टी भरती रही। मैं जितना रगड़ सकती थी उतना खुद को रगड़ा। जैसे पानी से और रगड़ने से ये नीचता

के भाव चले जाएंगे। असल में ये कभी नहीं जाते। थोड़ा थोड़ा करके आत्मा पर इस तरह छाप जाते है कि अंततः आत्मा ही मर जाती है।

रेखा दोबारा बुलाने आई तो मैं थोड़ी होश में आई, गुसलखाने से निकली तो कपड़ों की समस्या हुई। मैने उसे बताया तो वह अपना एक सूट ले आई। मैने पहना और उसके साथ उसके कमरे में चल दी।

जब मैं गई तो उसने खाना मंगवा रखा था। पूछने पर बताया कि वैसे तो एक रसोई है सबके लिए ही, नीचे वाली मंजिल पर लेकिन साझे की है। कौन इतना झमेला उठाए ? राशन मंगवाए ? और चोरी का भी रहता है, कौन किसका राशन इस्तेमाल कर ले। ज्यादा कीच किच वाला कम है तो मैं तो ज्यादातर मंगवा ही लेती हूं। गुजारा करना है। और दिन भर इतना शरीर तुड़वाने के बाद मुझमें खाना बनाने की हिम्मत नहीं

खाने के नाम पर दो बिलकुल ही कच्ची रोटी थी जो अखबार में लिपटी हुई थी। थोड़े से चावल और एक दाल जिसमें तेल और पानी के अलावा कुछ न दिखाई देता था।

और तीखा बहुत।

दाल और चावल एक पॉलीथिन में बंधे थे और रोटी अखबार में।

थाली पच्चीस रुपए की थी यानि दो टाइम कुल पचास रूपए।

खाना खाकर हम लेट गए और पता नहीं कब नींद आ गई। सुबह आठ के करीब मालकिन के बुलावे पर आंख खुली। उसने मुझे नीचे बुलाया था।

मेरा मन डर के मारे सहम गया था। क्या सुबह सुबह भी ग्राहक होगा ? ये बात सोचते ही मुझे कल का नर्क याद आ जाता। क्या यही सब अब मेरी जिंदगी हो जाएगी। मुझे चलने में भी थोड़ी दिक्कत थी और शरीर टूटा जा रहा था। जैसे बुखार हो गया हो। सर भी भारी सा था।

मैं नीचे गई तो मालकिन अपनी कुर्सी पर बैठी कॉपी में कुछ लिख रही थी। उसने नजर उठा के मुझे देखा और फिर अपने कम में लग गई। थोड़ी देर बाद ब्लाउज से दो सौ रुपए निकाल कर मेरे हाथ में रख दिए।

"तेरी पहली कमाई। " इतना बोलकर वह फिर उस कॉपी में कम करने लग गई।

मैं एकटक मेरी हथेली में पड़े सौ के दो नोटो को देखती रही।

कल जो नर्क मैंने देखा, मेरे जिस्म ने महसूस किया उसकी बस इतनी कीमत ? मात्र दो सौ रुपए? जिस नरक ने मेरी जिंदगी बर्बाद कर दी, जो मेरे लिए ताउम्र एक सदमे की तरह बन गया उसकी कीमत बस दो सौ रूपए थी। मेरी कीमत दो सौ ही थी।

मेरे मन में घृणा घर किए जा रही थी।

मालकिन ने शायद मुझे उस अवस्था में देख लिया।

"हजार में से चार सौ सीधा दलाल के, तीन सौ जो तुझे कपड़े दिए उसके, सौ तेरे कमरे के। तूने क्या सोचा कि तू हजार के हजार लेगी ? जैसा जिस्म तेरे पास है वैसा ही सबके पास है। कुछ अलग नहीं है तू। हम सब यहां पागल थोड़ी बैठे हैं जो तुझे फ्री में सब देंगे। " मालकिन ने कॉपी में देखते हुए ही बोला।

मेरे मन की घृणा और बढ़ गई और मैं वो पैसे हाथ में दबा अपने कमरे में आ गई।

दो सौ रूपए।

बस।

इस यातना के।

ये कैसा पदानुक्रम है ? देह मेरी, नरक मैने झेला और सबसे कम पैसे ही मुझे मिले ?

मैने रेखा को बताया तो पता चला कि हजार तो बस शुरू में ही मिलते हैं। साधारणतः दो सौ रेट है और थोड़ी बहुत जो कम उमर की हैं उनका चार सौ पांच सौ तक चला जाता है।

इतनी कम कीमत ? हमारे वजूद की बस इतनी ही।

दिन का सौ रुपए कमरे का किराया, लगभग सौ ही चाय पानी और खाने के, दलाल के, कपड़ों के और थोड़े बहुत मैकअप के। खर्चे इतने और जिस्म की कीमत ? बस दो सौ एक ग्राहक के ?

दिन में दस ग्राहक भी निकले तो भी दो हजार बने। इसमें से हर ग्राहक पर चालीस प्रतिशत दलाल की कमीशन, तीस प्रतिशत मालकिन की _ चौदह सौ रूपए हो गए। खाने के और बाकी सामान के दो सौ लगा लें तो दिन के लगभग चार सौ रुपए बचे। वो भी तब जब दस ग्राहक हो जाएं। और महीने में पांच सात दिन तो काम नहीं हो पाता।

रेखा ये सब बताए जा रही थी और मैं अपनी नरकनुमा आने वाली जिंदगी का हिसाब किताब किए जा रही थी।

मैं पहले दिन के दर्द से उभरी भी नहीं थी कि मालकिन ने फिर ग्राहक भेज दिया। आज तो दिन में भी। रात में भी तीन चार। फिर अगले दिन भी यही क्रम चला और ग्राहकों की संख्या बढ़ती चली गई और मेरी आत्मा छोटी पड़ती चली गई।

एक महीना ऐसे ही बीत गया। मेरे बाप का न तो कोई फोन आया, न उसने मेरी मां से ही बात कराई और न वह खुद आया।

मैने एक तरह से इस जीवन को स्वीकार ही कर लिया था। लेकिन मन में अब भी था कि घर चली जाऊं। मालकिन को बीस हजार रूपए और कुछ मुनाफा चाहिए। यानी लगभग तीस हजार या पच्चीस हजार। अगर औसतन ग्राहक की कमाई लेकर चलें तो मैं अपनी उमर के हिसाब से तीन सौ लगा लूं उसमें से नब्बे रूपए मालकिन के तो लगभग मैं साल के अंदर ही घर जा सकती हूं।

यह तो आसान ही है फिर रेखा क्यों नहीं घर गई ?

मैं अपने कमरे में पड़ी पड़ी यह हिसाब किताब लगाए जा रही थी। मैंने रेखा से पूछा तो उसकी आंखों में पानी आ गया।

उसने जो बताया उससे मेरे पैरों तले से जमीन ही खिसक गई।

उसकी एक बेटी थी -दो तीन साल की। मालकिन के कब्जे में ही। मालकिन उससे मिलने देने के भी तीन सौ रूपए लेती थी।

जब रेखा सत्रह की हुई तो मालकिन ने ग्राहक को कंडोम नहीं इस्तेमाल करने दिया ताकि वह गर्भवती हो जाए। वह हुई भी और उसकी एक बेटी भी हुई। लेकिन बच्चा चाहे किसी भी आदमी से हो, मां तो मां ही होती है न। बस उसी के लिए रेखा ये जिल्लत भरी जिंदगी जी रही थी।

पाशविकता की भी एक हद्द होती है न। लेकिन इसे पाशविकता कहना भी सही होगा क्या ?

पशु भी दया कर लेते हैं। एक दूसरे को अपना लेते हैं।

लेकिन ये क्या है ? इंसान इंसान को बेच रहा है, नोच नोचकर खा रहा है, और जब पीड़ित बाहर निकलने की आस लगाने लगता है तो उसके ममत्व को सहारा बना कर उसका फायदा उठाया जाता है। लोग किस हद्द तक गिर गए हैं। और किस चीज के लिए ?

क्या पैसे इतने ज्यादा अहम हो गए हैं या दुनिया में पैसे कमाने का और कोई जरिया ही नहीं बचा है। यह तो दलदल है, हैवानियत है, इस तरह का बर्ताव किसी भी इंसान से अपेक्षित नहीं है।

लेकिन ऐसा हो रहा था और शायद आने वाले समय में मेरे साथ भी होने वाला था।

यह सोचकर ही मेरी रूह कांप गई। मैने मन ही मन निश्चय कर लिया कि यहां से तो भागना ही है। बस मैं सही वक्त और घड़ी का इंतजार करने लग गई।

यह वक्त तब आया जब मेरे गांव का ही एक आदमी ग्राहक के तौर पर मेरे कमरे के अंदर आया। उसने मुझे पहचान लिया और मैने भी उसे पहचान लिया।

"चाचा, मेरा बाप मुझे यहां बेच गया। तुम मुझे इस नरक से निकाल दो। मेरी अम्मा के पास पहुंचा दो। मैं जीवन भर तुम्हारे पैर धोकर पियूंगी। " मैने बड़ी उम्मीद के साथ उसकी तरफ देखा।

"तुम्हारे बाप पर तो मुझे पहले से ही शक था कि वह कोई ऐसा काम करेगा। लेकिन उसने तुम्हारी अम्मा को पता नहीं क्या पथ पढ़ाया है कि वह सोचती है तुम किसी फैक्टरी में लग गई हो। " चाचा ने कहा।

"लेकिन सुनो " उसने जारी रखा " देखो तुम बुरा मानो या भला, मैं इस समय तुम्हारा ग्राहक हूं, और मैने पूरे तीन सौ रूपए दिए हैं तुम्हारे, उनको वसूलना तो मेरा फ़र्ज़ है। समय आयेगा तो मैं तुम्हे यहां से निकल दूंगा। " उसने बड़ी बेशर्मी के साथ कहा।

मेरी आत्मा और ज्यादा मर गई और इस संसार के हर रिश्ते से मेरा जी उकता सा गया।

इस बात को ही लगभग दो साल हो चुके थे लेकिन चाचा अपनी वसूली लेकर चला गया और मुड़कर कभी नहीं आया।

एक बार मैने भागने की भी कोशिश की। नीचे दुकानों तक भी पहुंच गई थी लेकिन किसी दलाल ने देख लिया था शायद।मालकिन को इत्तिला करदी गई और दो तीन जवान से आदमी मुझे पकड़कर वहीं छोड़ गए। मैने हाथापाई की भी कोशिश की लेकिन मेरा उनके सामने कहां बस चलना था। उस दिन मालकिन ने मुझे बहुत मारा। बेल्ट से, डंडे से, तब तक मारा जब तक मैं अधमरी न हो गई और उस रात ज्यादातर ग्राहक मेरे पास ही भेजे गए।

मेरा शरीर थक के चूर हो चुका था, मैं दर्द के मारे कराहे जा रही थी, शरीर बुखार से तप रहा था, मेरी आँखें भी नहीं खुल रही थी, मैं निरस्त पड़ी थी लेकिन ग्राहक लगातार आए जा रहे थे और अपने पैसों की वसूली करके निकल जाते थे। दस के बाद मैने गिनती छोड़ दी। मालकिन ने शायद एक दो को निरोध भी नहीं लगाने दिया।

अगले दिन भी मेरी हालत ठीक नहीं हुई थी लेकिन ग्राहकों का सिलसिला वही रहा। मालकिन के पास जितने भी ग्राहक आते सबको मेरे पास भेज देती।

दिन में भी एक दो आए और रात में तो जैसे आते ही थे।

आम दिनों में ग्राहकों के लिए हमें नीचे पड़े बेंच पर बैठना होता था। ग्राहक आता, हममें से छांटा जाता और अपने पैसे वसूल कर लेता।

मालकिन के पास तो सीधे की जानकार या कोई स्पेशल डिमांड वाला ग्राहक ही जाता।

कई दिन तक बस यहीं सिलसिला चला।

मालकिन ने पूरी कोशिश की कि मैं भी गर्भवती हो जाऊ। मेरे कमरे की तलाशी ली जाती कि कहीं मैने निरोध तो नहीं छुपा रखे। ग्राहकों की तलाशी ली जाती, उन्हें निरोध न इस्तेमाल करने की सलाह दी जाती।

ज्यादातर मान जाते। एकाध नहीं मानता।

पूरे एक महीने की कोशिश के बाद भी कोई नतीजा नहीं निकला। मालकिन ने मुझे बांझ कहकर बुलाना शुरू कर दिया और इस तरह कई महीने निकल गए। लेकिन अब मेरे ऊपर सख्ती पहले से ज्यादा बढ़ गई थी। मुझे अकेला ही रहने के लिए मजबूर किया जाता।

मालकिन की कोशिशें चलती ही रही और मैं गर्भवती नहीं हो पाई। मैने अपनी किस्मत पर पहली बार फक्र किया। उसी रोजमर्रा की नरकीय जिंदगी में मुझे पांच साल हो गए और मैं बीस की हो गई।

इन पांच सालों में मेरा विश्वाश मानवता, समाज, करुणा जैसे शब्दों से पूरी तरह उठ गया था।

कई ऐसी घटनाएं हुई जो मुझे मानव स्वभाव के सबसे निचले पहलू को देखने के लिए मजबूर कर जाती। लेकिन एक भी घटना ऐसी न हुई जिससे मेरा मानवता पर विश्वाश दोबारा बन सके।रेखा भी छब्बीस सत्ताईस की हो गई थी। उसकी कमाई अब एक ग्राहक पर दो सौ रूपए हो गई थी और मेरी अब भी तीन सौ ही थी। कभी कभी कम तो कभी कभी ज्यादा।

और हमारे बीच का रिश्ता सगी बहनों से भी गहरा हो गया था। उसकी लड़की सात साल की हो चुकी थी, रेखा उसको स्कूल भेजने के भी पैसे देती लेकिन मालकिन अब भी उसे बिना पैसे लिए उस लड़की से मिलने न देती। कई बार वह मेरे सामने रोने लग जाती तो कई बार अपनी किस्मत को कोसती।

इसी बीच उसका एक नियमित ग्राहक भी बन गया था। वह बस उसी के पास आता और अन्य को मन कर देता। एक दिन मुझे रेखा ने बताया कि वह उससे शादी करने की बात बोल रहा है। वह रिक्शा चलाता था।

मुझे यकीन नहीं हुआ। इस दरिंदगी की जगह में मैने इस तरह का पहला किस्सा सुना था।

मुझे रेखा के लिए खुशी भी हो रही थी और चिंता भी। खुशी इसलिए कि सब ठीक हुआ तो उस बेचारी का घर बस जाएगा और चिंता इसलिए कि इस नरक से आगे भी एक नरक है जो मौत तक जा सकता है।

इस दुनिया में मानव अंग भी बेचे जाते हैं।

एक दिन रोटी वाले अखबार में मैने ऐसी ही खबर पढ़ी थी।

नीचता में दुनिया अपनी हर हद पर किए जा रही थी। मैने रेखा तो चेताया भी लेकिन उसने इस बात को सिरे से खारिज कर दिया।

फिर बात उसकी बेटी की हुई, उसको कैसे निकाला जाए।

एक तो सीधा तरीका था कि कोई जानकार ग्राहक बन कर आए और उसे खरीद ले। लेकिन इतना पैसा आएगा कहां से ? और दूसरा तरीका था कि किसी की मदद ली जाए।

लेकिन पुलिस की मदद संभव न थी। पुलिस तो हमारे हिस्से की कमाई से खुद हफ्ता लेती थी। चुप रहने का। झूठे रेड करने का। या रेड की सूचना देने का।

पहले ही तरीके की आजमाइश पर बात आई।

उस आदमी को बिचौलिया लेकर एक दलाल से संपर्क किया गया। उसी ने मालकिन से मोल भाव किया। तीन लाख में बात हुई।

इतनी बड़ी रकम ? कुछ दिन तो ऐसे ही सोच में निकल गए। फिर मैने निर्णय किया कि थोड़े बहुत पैसे जो मैने बचा रखे वो रेखा को ही दे दूं। पहले इसको जरूरत है। मेरे पास एक लाख रूपए के लगभग जमा था जो मैने कहीं कहीं छुपा रखा था। सोचती थी कि घर जाऊंगी तब कम आयेंगे। पांच साल में मैं बस इतने ही जमा कर पाई।

लेकिन अब रेखा को इनकी जरूरत मुझसे ज्यादा थी।

मैने चुपके से वह पैसे उसे दे दिए। बेचारी रोने लग गई। बस मैं इतना ही कह पाई कि अगर उस बाहरी दुनिया में मेरे लिए भी कहीं कुछ जगह हो तो जरूर देखना।

थोड़ी बहुत बचत और थोड़ा उधार करके जैसे तैसे तीन लाख भी जमा हो गए। मलिन को दिए गए और लड़की को उसके कब्जे से छुड़ा लिया गया।

अब रेखा की बारी थी। उस आदमी ने अबकी बार सीधे मालकिन से ही बात की। बीस हजार तय हुए। लेकिन हमारे पास अब कुछ न बचा था।

इधर उधर से करके भी पांच हजार ही बन पाए।

उधर मालकिन ने एक दिन रेखा को बुलवाया।

"तू खुद को बहुत तेज समझती है ?" मालकिन ने थोड़े गुस्से से रेखा से पूछा।

"नहीं, मैने क्या किया"

"तुझे क्या लगता है कि मुझे पता नहीं लगेगा कि चल क्या रहा ? तूने अपनी लड़की को तो निकलवा दिया लेकिन अब मैं देखती हूं तू कैसे निकलेगी। पचास हजार लिए बिना मैं तुझे कहीं नहीं जाने दे रही। याद रखना।"

रेखा मालकिन के पैरो में गिर गई।

"मालकिन मैं कहां से पचास हजार लेकर आऊंगी। थोड़ी बहुत दया करो। मैने आपके पास इतने साल काम किया। कभी शिकायत का मौका नहीं दिया। लेकिन अब मुझे जाने दो। वो आदमी शादी करेगा मुझसे। मुझे रोज रोज के ग्राहक नहीं बस एक आम सी जिंदगी चाहिए। मेरी बेटी के साथ। भगवान के लिए, मुझे जाने दो अब यहां से। दो तीन साल में वैसे भी मैं इस धंधे के लायक नहीं बचूंगी। आपको भी पता है। मालकिन दया दिखता हुए मुझे जाने दो। आपका बहुत एहसान रहेगा। " रेखा ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

" मुझे पता है कि तू दो तीन साल में ज्यादा काम की नहीं रहनी तभी तुझे जाने दे रही। लेकिन पचास हजार लिए बिना नहीं जाने दूंगी। मुझे भी अपना नफा नुकसान देखना है। " मालकिन ने फैसला सुनाते हुए कहा।

रेखा कुछ देर तो वहीं उसके पैरों में पड़ी रही। शायद मालकिन का मन बदल जाए।शायद उसके अंदर छिपी औरत बाहर आ जाए, जग जाए और उसकी व्यथा सुन ले।

लेकिन ऐसा कुछ न हुआ। मालकिन के अंदर की औरत काफी पहले ही मर चुकी थी। शायद तभी जब वो धंधे में थी।

लेकिन औरत बेशक मरी हो, इंसानियत तो जिंदा होनी ही चाहिए। लेकिन मालकिन में वो भी न थी। बिल्कुल ही न थी।

दुख झेलते झेलते हम कब इतने पत्थर बन जाते हैं न कि फिर दूसरों के दुख हमें दिखाई ही नहीं पड़ते। कुछ दिखाई पड़ता है तो बस अपना स्वार्थ। खुद को हर हाल में बचाने की चेष्टा। खुद को किसी भी तरह बनाए रखने का जूनून, बेशक ही वह हमे पत्थर क्यों न बना दे।

जिस तरह मालकिन ने रेखा का साथ नहीं दिया ठीक उसी तरह वह भी गुजरी होगी किसी परिस्थिति से, जहां दुनिया ने उसे ठुकरा दिया होगा, प्रतिपल की

व्यथा और अकेलापन ही हमें इतना कुंठित बना देता है। मूल स्वभाव से तो हम सब इंसान ही हैं।

व्यथा से खुद को पठार बना लेना ठीक है लेकिन उस पठार में अगर कहीं भी बीज फूटने की उम्मीद जगे तो थोड़ी सी राह बना देनी चाहिए। उन बीजों के लिए। वो बीज जो एक दिन शायद पेड़ बन जायेगे और हमारी बंजर जमीन भी फिर सुंदर दिखेगी। खुद खत्म होकर भी किसी के वजूद को बचा लेना, उसे स्वीकार कर लेना, कभी कभी जाने भी देना, यही सब ही तो हमें इंसान बनाता है। पत्थर होकर भी नदी के साथ बह जाना। टूटना, बिखरना, मिट्टी बन जाना, बीज को जगह देना। यही सब जीवन है।

लेकिन मालकिन ज्वालामुखी से निकला पठार थी। उसकी जमीन बंजर थी। और आत्मा तपते उफान के सिवाय कुछ न थी।वो अपनी जगह से जरा भी टस से मस न हुई।

हम लोगों से पचास हजार नहीं बन पड़े। सब तो गुड़िया को छुड़ाने में लग गया था। तय हुआ कि पैसे इक्ट्ठा होने तक वह यहीं रुक जाएगी और गुड़िया को किसी आश्रम में छोड़ देंगे। स्कूल के पैसे रेखा देती रहेगी।

वह भला आदमी भी मन मसोस कर रह गया। उसने गुड़िया को एक आश्रम में छोड़ दिया और वह भी लग गया पैसे जुटने। ज़िन्दगी भी अजीब ही है न। पैसे वालों को उधारी जल्दी मिल जाती है। और हम गरीब भले ही ईमानदार भी क्यों न हो, हमें कोई उधारी भी नही देता।तीन चार महीने ऐसे ही निकल गए। पैसे इक्ट्ठा करते करते। हिसाब देखा तो अभी बीस भी न हुए थे। धंधा भी ठंडा ही पड़ गया था। नई कलेक्टर आई थी। लोग बोल रहे थे थोड़ी सख्त है। रेड का खतरा बढ़ गया था और ग्राहक कम होते जा रहे थे।

पैसे इक्ट्ठा होने का नाम ही नहीं ले रहे थे। दिन भर में दस ग्राहक मुश्किल से बन पाते। दस ग्राहक माने दो हजार रुपए और उनमें से बचत मात्र पांच सौ से छह सौ की। कुछ बिना दलाल आते तो थोड़े बहुत पैसे बच जाते।

इसी तरह से एक महीना और बीत गया। अब थोड़े ग्राहक आने शुरू हुए, थोड़ी उम्मीद जागी कि कुछ पैसे जुड़ जायेगे। इसी बीच रेखा के पास एक आदमी आने लग गया। चार पांच बार वह लगातार आया तो रेखा ने उसे एक दो बातें बतानी शुरू कर दी। थोड़े और दिन बीते तो रेखा ने उसे सब बता दिया। पैसों की कमी का, अपनी गुड़िया का, अपने प्रेमी का।

और उस आदमी ने एक बड़ा अजीब सा प्रस्ताव रखा _ हर दिन दो घंटे के पांच सौ रूपए और ऊपर मालकिन का, दलाल का व अन्य खर्चा भी उसका।

रेखा ने बिना सोचे समझे ही हां भर दी। वह भी आतुर थी, अपनी बेटी से मिलने के लिए, अपना घर बसाने के लिए, इस गंदगी से बाहर निकलने के लिए।

उस अजीब आदमी ने अपनी कुछ अजीब सी ही शर्तें रखी। वह दो घंटे सब वह करेगी जो वह बोलेगा। किसी चीज को भी न नहीं कहेगी। हालांकि रेखा को पता था कि ऐसे सौदे कहां तक ले जा सकते हैं लेकिन फिर भी उसने हामी भर ली।

और फिर शुरू हुआ उसका नरक में ही नरक से बदतर दौर। पहले ही दिन उस आदमी ने निरोध से मना कर दिया और रेखा को बोल दिया कि वह उसके लिए ही निरोधक दवाई ले आया करेगा। शुरू के हफ्ते में रेखा को गुप्त जगह का संक्रमण हो गया। अगला हफ्ता आते आते इतना बढ़ गया कि उसके पेट में दर्द रहने लगा। पेशाब जाने में दिक्कत होने लगी। बुखार आने लगा। उसने फिर भी ध्यान न दिया और नीचे दुकान से दवाई मंगवा के खा ली। उस अजीब

आदमी ने कुछ दवाई लाकर दी और वह थोड़ी बहुत ठीक हो गई। अभी बुखार पूरी तरह गया भी नहीं था कि उसके पूरे बदन पर, मुख्यतया छाती पर इतने जोर से काटने के निशान दिखने लग गए जैसे किसी शैतान का काम हो। दांतों के निशान दिखना अलग बात है लेकिन इतनी जोर से काटे जाना कि खून आ जाए, मांस उखाड़ जाए, ये शैतान का काम है। हवस की इंतहा है। वहशीपन है। लेकिन फिर भी रेखा कुछ न बोली। एक बार मालकिन ने टोका भी लेकिन वह न मानी।

उसके प्रेमी ने भी टोका लेकिन बस रेखा पर तो यहां से निकलने का जूनून सवार था। वह किसी भी तरह, किसी भी हद्द तक जाकर यहां से निकलना चाहती थी। मैं कुछ कहती तो बोल देती कि तू देखना बबीता यहां से निकलकर मैं खुद ब खुद ठीक हो जाऊंगी।

और क्या ही सहना है ? सोच लूंगी यह भी नसीब में ही था। जब चौदह पंद्रह साल की उम्र में ही नरक देख लिया था तो यह क्या चीज है। तू ही बता बबीता।

बात तो उसकी ठीक थी। नरक ही तो था ये। जीता जगगता। ऐसा नरक जो धीरे धीरे हमें मार रहा था। जहां प्रतिपल एक सौ वर्ष की तरह है। और जहां दो सौ रूपए में हमारा जिंदा मांस खरीद लिया जाता था। नोचने के लिए।

मैं कुछ न बोल पाई रेखा को। बोलती भी क्या ? कहीं न कहीं मुझे पता ही था कि हमें पचास हजार इक्ट्ठा करते करते भी साल से ऊपर ही लग जाएगा।

वह आदमी रोज आता। एक महीना और बीत गया था। और रेखा का शरीर पीलेपन से नीलेपन पर आ गया था। कभी उसकी गर्दन पर खून दिखता, कभी हाथ पर, कभी पैर पर और छाती पर तो हमेशा।

एक दिन तो उस बेकार आदमी ने उसके कान को इतनी जोर से कांटा कि खून रुका ही नहीं और उसे पट्टी करानी पड़ी।

एक बार उसने रेखा को खिड़की से ही बांध दिया और वहशीपन की सारी हदें पार करदी। डॉक्टर के पास गए तो उसने बताया कि यह एक तरह से रेप ही है। इस कदर कि हैवानियत जानवरों में भी देखने को नहीं मिलती। लेकिन रेखा तब भी न मानी। कुल मिलाकर पैंतीस हजार हो चुके थे।उसे कैसे भी करके पंद्रह और करने थे।

"बस बबीता, एक महीना और, फिर मैं यहां से हमेशा के लिए चली जाऊंगी। अपने घर। जहां गरीबी तो होगी लेकिन दो वक्त की रोटी और अपनी बच्ची के लिए खुद का जिस्म नहीं बेचना पड़ेगा। " वह कभी कभी रुआंसी होकर कहती। कहती तो मुझसे लेकिन ढांढस खुद का बड़ा रही होती। जैसे अपने शरीर को समझा रही हो कि एक महीना और मेरा साथ दे।

मैं बस किस्मत और भगवान को कोस कर रह जाती। किस्मत तो मेरी भी ऐसी ही थी न। घरवालों ने शायद मुझे ढूंढने की कोशिश तक न की होगी। मेरे बेवड़े बाप ने शायद लड़ाई में बता भी दिया हो कि मैं कहां हूं। खैर। पहले तो रेखा यहां से निकले। फिर मैं अपना देखूंगी।

उस बेकार आदमी में जरा भी शर्म न थी। रोज चला आता। बुखार में, माहवारी में, थकान में। वह कुछ न देखता। इसकी हदें पर होने लगी थी और अब रेखा के शरीर पर सिगरेट के निशान भी दिख रहे थे। उसके चेहरे पर भी कहीं लाल तो कहीं नीला रंग दिखाई पड़ता। एक बार तो उसने रेखा के मुंह पर उतनी जोर का मुक्का मारा कि उसका दांत टूट गया, खून की फव्वार आई और होंठ सूज गया। अब उसके शरीर पर ऐसी कोई जगह न बची थी जहां लाल या नीला रंग न हो। वह पहले से आधी हो चली थी। डेढ़ दो महीनों में ही। उसका ये रूप देखकर अब आम ग्राहक भी उसके पास नहीं आते थे। दिन में उस बेकार

आदमी के अलावा पांच ग्राहक मुश्किल से मिलते । मुश्किल से उसने उस आदमी को छोड़ने की ठानी । पांच ग्राहकों में दिन का गुजारा भी बहुत मुश्किल हो जाता है । पांच ग्राहक मतलब एक हजार रूपए और उसमें से मुश्किल से चार सौ हमारे होते थे । सौ दो सौ तो खाने पीने और चाय में ही खर्च हो जाते ।

रेखा ने एक दिन हिम्मत करके उस आदमी को यह बात बोल दी । उसने पीछे हटने की बजाय रेखा को ज्यादा पैसों का लालच दिया । पंद्रह सौ में चार घंटे । दलाल और बाकी खर्ची से अलग । रेखा ने फिर से हां भर ली ।

मैने लड़ाई की तो बोली " अपनी बेटी के लिए किया । मुझे नहीं पता कि बाहरी दुनिया के लोग उसे किस तरह से रखेंगे। मुझे किसी पर विश्वाश नहीं बबीता। और अब वहशीपन की यह हद्द देखकर तो मुझे साधारण इंसानों से ही डर लगने खा है। मुझे चाहे मरना ही क्यों न पड़ जाए लेकिन मैं अपनी बेटी को ज्यादा दिन अकेले नहीं छोड़ पाऊंगी । मुझे उसे इस दुनिया से बचाना है । "इतना कहकर वह मेरे गले लग जोर जोर से रो पड़ी । ठीक वैसे जैसे कोई झरना फूटता है । और मैं बस बुत बन बैठी रही । उसके बाल सहलाते हुई। उसके कमजोर से शरीर को थामे हुई । भगवान को कोसती भी हुई और प्रार्थना भी करती हुई कि इसका ये वक्त जल्द खत्म हो जाए और ये यहां से निकल जाए ।

लगभग बयालीस हजार रूपए इकठ्ठा हो चुके थे बस आठ बाकी थे । मतलब उसे बस उस बेकार आदमी के साथ एक सप्ताह ही बिताना था । मुझे घिन हो गई थी उस आदमी से लेकिन । कला रंग, बड़ी बड़ी बेढंग सी मूंछें, शराब से थोड़ी लाल मोटी मोटी आँखें, तोंद और लंबी सी कद काठी। किसी यमराज से कम न लगता था वो।

[रेखा ने उसे बता दिया था कि वह यहां कम ही दिन है। और बताने से चीजें और ज्यादा बदतर हो गई। कभी उसके कमरे से उस आदमी के जोर जोर से हंसने की आवाज आती, कभी रेखा के रोने की, कभी दीवार से कुछ लगने की, कभी मारने की, कभी बेल्ट की या कभी चिल्लाने की। सामना होता तो रेखा एक दबी सी व्यंग्यपूर्ण हंसी हंस देती कि कुछ दिन और।

उसकी चलते समय भी चक्कर आने लगे थे।

ले दे के वह दिन भी निकल गए। मैने आखिरी दिन देखा उस आदमी को। उसके चेहरे पर बिल्कुल अफसोस न था। अपने सड़े हुए दांत दिखाकर वह खिसियानी हसी हंसता रहा। मूंछों पर ऐसे हाथ फेरता रहा जैसे उसने कोई किला जीत लिया हो। " तुझे भी निकलना है यहां से " वह जाते जाते अपनी भारी आवाज और एक गुरूर में मुझसे पूछने लगा।

" नहीं "जितनी कड़वाहट मेरे मन में थी उससे कहीं ज्यादा निकल के आई मेरे उस एक नहीं में। उसकी तरफ देखकर मैने एक तरफ थूक दिया। उसके अहम पर ये बात लग गई शायद। एक वैश्या द्वारा धिक्कारे जाना। वह आग बबूला होकर मेरी तरफ आगे आया " रण्डी साली, अपनी औकात मत भूल। तू जानती नहीं है मै कौन हूं। " वह इतनी तेज आवाज में बोला कि मैं एकदम सहम गई। इस तरह की भाषा की आदत तो मुझे काफी समय पहले ही हो चली थी लेकिन कभी इस तरह सहमी नहीं थी मैं। आस पास के कमरों से सब निकलकर आए तो मेरी कुछ हिम्मत बढ़ी।

[डरी होने के बावजूद भी मैं कांपते पैरों को संभालते हुए गुस्से से लाल मुंह से बोल पड़ी " मुझे पता है तू कौन है। नामर्द है साला। जिस आदमी की घर पर नहीं चलती न वही बाहर आकर अपनी मर्दानगी इस तरीके से साबित करता है जैसे तू कर रहा। घर में तो तेरी कुत्ते जितनी भी कद्र न होगी। "

"कुत्तया, तू अपनी हैसियत में रह " वह हाथ उठाने ही वाला था कि मालकिन ने पकड़ लिया।

"यहां ये सब भी चलता " वह रुतबे वाली आवाज से बोली।

"और तू लड़की, ग्राहकों से जबान लड़ाना मतलब पैसे खोना। और हम यहां पैसे के लिए ही बैठे हैं। " उसने मुझसे भी उसी आवाज में कहा।

"लेकिन मालकिन" मैं बोलने ही लगी थी कि मालकिन ने हाथ दिखाते हुए रोक दिया। उसने उस बेकार आदमी की तरफ देखते हुए कहा " तुम जाओ, तुम्हारा काम हो गया न "।

"लेकिन इस दो टके की औरत ने हिम्मत कैसे की मुझसे इस बात करने की "। वह आदमी मेरी तरफ देखते हुए बोला।

"देखो, तुम्हे भी पता है और मुझे भी कि तुमने रेखा के साथ जो बर्ताव किया वह हद्द से ज्यादा ही था। कितनी बार तो उसे हम अस्पताल लेकर गए। तो तुम इस बात को तो भूल ही जाओ। बात संभालते यहां से निकल जाओ तो सही है। " मालकिन ने थोड़ा धमकी भरे और थोड़ा समझाने वाले लहजे में कहा।

"देख लूंगा, सारी रंडियों को।" बड़बड़ाता हुआ वह आदमी एकदम सीढ़ियों में गायब हो गया।

उसके जाने के बाद मालकिन ने सबकी तीतर बितर किया और मुझे व रेखा को रोक लिया।

"तुझे ज्यादा पड़ी है इसकी जब इसको खुद की ही नहीं पड़ी तो ? "

मैं बोलती इससे पहले ही वह बोल पड़ी " मुझे ग्राहकों के साथ फालतू की चिकचिकबाजी नहीं चाहिए । आज से तेरे हर ग्राहक पर तू मुझे सौ रूपये ज़्यादा देगी ।" मालकिन ने फैसला सुनते हुए कहा।

"मालकिन " मैं बोलने लगी तो उसने मुझ कुछ इस तरह देख की मानो खा ही जाएगी ।

मैं चुप हो गई । "जी " बस इतना ही कह पाई ।

उसके जाने के बाद रेखा ने मुझे बहुत डांटा । " तुझे क्या जरूरत थी इतना उल्टा बोलने की । हमारी जिंदगी ने हमें ऐसा मौका नहीं दिया कि हम खुद के लिए खड़े हो सकें। इस समाज और इसके लोगो ने हमें नरक दिया, अपनी भूख का साधन बनाया लेकिन हमारे लिए की जगह कहीं भी न दी । और जितनी शीघ्रता से हम ये मान ले उतना ही हमारे लिए सही है। " उसने ने एक जगह टकटकी लगाए ये सारी बातें कह दी मानो वह भी अपनी आत्मा का दुख उड़ेल रही हो ।

बात थी भी सही । अगर समाज के लोग हमें काम दें, इज्जत दें, बराबरी दें तो कौन इस दलदल में फसना चाहेगा ? कौन मात्र दो सो रुपए के लिए अपने बदन को उन दरिंदो के हवाले करना चाहेगा जिनके हाथ का दिया पानी तक पीने का न मन करे । समाज ने हमें अपनी भूख का साधन तो बनाया लेकिन हमें जगह देना भूल गया । भूला भी नहीं अनदेखा कर दिया । हंसी आती है समाज की इस व्यवस्था पर जहां सब कुछ इतना खुला होते हुए भी इतना बंद है । जहां बाप बेटी को, प्रेमी प्रेमिका को, भाई बहन को यहां तक की पति पत्नी तक को बेच देता है । पैसों के लिए । और फिर किसी का बाप, प्रेमी, भाई, पति अपनी हवस पूरी करने आते हैं ।

अगर समाज में यह दिखावा न हो, यह रूढ़िवादी सोच न हो तो शायद इस भूख को दबाने की बजाय खुलकर दिखाया जा सके । शायद इस भूख को "

बुरा " न समझा जाए। इंसानी जरूरत ही समझा जाए। अब तो समाज ने इसे पर्दे के पीछे रखकर बहुमूल्य बना दिया है। शायद यही कारण है कि हम जैसे लोग यहां बेच दिए जाते हैं। यही कारण है कि ये प्रणाली संगठित न होते हुए भी इतने संगठित ढंग से चल रही है।

यदि सेक्स के विषय को हम हीनता की बजाय मानव की शारीरिक प्रक्रिया का एक हिस्सा मान लें, सबको खुलकर बोलने की आजादी दें, सबको इस विषय पर शिक्षित करें तो क्या ये लोग उत्सुकतावश यहां आयेंगे ?

शायद नहीं।

सबको हां ना का मतलब सिखाए तो शायद हम समझ सकें कि बस यही एक परम सुख नहीं है। और किसी की मजबूरी का फायदा उठाते हुए तो कतई नहीं।

खैर, ये सब बातें समाज के दार्शनिकों की हैं बस उन दार्शनिकों को राजनीति या विचारधारा तो दिख जाती है लेकिन हम नहीं दिखते।

खैर।

इन बातों को लगभग एक सप्ताह हो गया था। और रेखा को गए दो दिन। दो दिन में ही मुझे अब यह कोठा खाने को आ रहा था। एकदम सूनापन सा छा गया था। रेखा मेरी बड़ी बहन जैसी नहीं बल्कि बड़ी बहन ही थी। उसके जाने के बाद अब सुख दुख बांटने के लिए मेरा कोई न था। हालांकि मैं उसके लिए बहुत खुश थी। अपना घर बसाने के नाम मात्र से ही वह खुशी से पागल हुई जा रही थी।

"जाते ही गुड़िया को आश्रम से निकाल लूंगी और फिर शादी कर लूंगी " वह पता नहीं कितनी ही बार यह बात दोहरा चुकी थी।

किसी की तो जिंदगी सुधरे। मुझे इसी बात में शांति थी। मैं मन ही मन दुआ करती कि अब इस गंदगी में कोई न आए। और कोई आए तो अपनी मर्जी से ही आए, इस तरह बेचा न जाए।

और अपनी मर्जी से कौन ही इस यातना में आयेगा ? उसे भी गरीबी या कोई मजबूरी ही ऐसा कराएगी लेकिन उसके पास सोचने का, फैसला लेने का मूल मानवीय हक तो होगा जो सबके पास होना चाहिए। लेकिन हमारे पास न था। मुझे बाप ने बेच दिया था और रेखा को मामा ने। हमारे अलावा और भी कई थी जिनको उनका नशेड़ी पति या प्रेमी ही यहां छोड़ गया था। क्या यह जिंदगी है ?

नहीं।

जिन लोगों ने इतना घिनौना काम किया वो समाज में खुले घूम रहे हैं और हमे यहां इन सड़ती दीवारों में बंद कर दिया गया है। उन लोगों के पास सारे अधिकार है _शिक्षा, समानता, स्वतंत्रता, शोषण के विरुद्ध, धार्मिक, संवैधानिक। सब। और हमारे पास क्या है ? कुछ भी नहीं। क्या ये नियति सही है ? जिन लोगों ने समाज के अछूत विषय को अपनी कमाई का आधार बनाया और कमजोर का शोषण कर उन्हें इस नरक में उतर दिया, वो लोग आज खुले घूमते हैं। और हम जैसे लोग ? हमारे अधिकार ? हम यहां इन दीवारों में बंद हैं और फिर समाज की नजरों में बुरे भी हम है। कोठा बुरा है लेकिन उसे बनाने वाले नहीं ? वैश्या बुरी है लेकिन उसका शरीर बेचने वाले नहीं ? ये धंधा गलत है लेकिन इसे इतने संगठित ढंग से चलाने वाले नहीं ? ये कहां का न्याय है ? ये कैसा समाज है ?

ये कैसा लोकतंत्र है जहां पारदर्शिता ही नहीं है ? सब कुछ बस योजनाओं में चल रहा है। लेकिन धरातल पर सब ज्यों का त्यों। हमारी किसी को नहीं पड़ी।

जब भी मैं बाहर जाने की, घर की सोचती तो चिंता में पड़ जाती, पता नहीं घरवाले सच जानने के बाद मुझे अपनाएंगे या नहीं।

फिलहाल की सोचूं तो मेरे पास यहां से निकलने का कोई रास्ता न था। जो पैसे थे वो रेखा को दे दिए थे। और भागने की हिम्मत मुझमें न थी। हालांकि मेरे कोई औलाद न थी जिसका प्रेम मुझे इस यातना में रोक कर रखे लेकिन फिर भी हिम्मत न होती कि दोबारा भागने की सोचूं। अगर पकड़ी गई तो ? इस बार मालकिन क्या करेगी ? मैने किस्सा सुना हुआ था कि दूसरे कोठे की मालकिन ने एक लड़की के पैर की उंगली काट दी थी जब उस लड़की ने भागने की नाकाम कोशिश की। मेरे मन ऐसी इसी बाते सुनकर बैठ जाता।

कभी भागुंगी तो ऐसे की कोई पकड़ न सके, ऐसा मौका देखकर। वर्ना पैसे जमा करके ही निकलूंगी।

लेकिन हम जैसा सोचते हैं वैसा होता कहां है ?

रेखा को गए अभी दस दिन ही हुए थे कि उसके कमरे में एक और लड़की आ गई। महज दस साल की। बिल्कुल सहमी सी। घुटनों तक लंबे बाल, एकदम गोरा रंग, और आंखों में आंसू। बेचारी रोए ही जा रही थी। बहुत सही खानदान की लगती थी। लेकिन मालकिन ने बेहरमी से बेचारी को उस कमरे में पटक दिया। वह सुन्न सी खड़ी उस कमरे को ही निहारती रही, ठीक उसी स्थिति में जिसमें मैं थी, लगभग छह साल पहले। मैं कुछ न बोल सकी। मालकिन वहीं थी।

"तुझे ज्यादा शोक चढ़ा है तमाशा देखने का ?" मालकिन ने रौब दिखाते हुए मुझसे पूछा।

"नहीं " बोलती हुई मैं अपने कमरे में आ पलंग पर बैठ गई और मेरा मन उस लड़की की मनःस्थिति पर जाकर रुक गया। क्या महसूस कर रही होगी वह ?

मैने जो किया था वही, जायज सी बात है। लेकिन मैं पंद्रह साल की थी जब यहां आई और वो दस की है। जब मुझे ही इन सम्बन्धों के बारे में कुछ नहीं पता था तो उसे क्या पता होगा ? कितना दर्दनाक होने वाला है उसके लिए यह सब । मेरी एक बहन भी तो इसी उमर की थी जब मैं यहां आई थी । मुझे इस लड़की में वही दिख रही थी । मालकिन चली जाए तो मैं उस लड़की से जाकर बात कर लूं लेकिन ऐसा मुश्किल है । इतनी कम उमर की लड़कियों के लिए मालकिन बहुत पाबंदियां लगती है । या तो वह उन्हें अपने कमरे में अपने पास ही रखती है या फिर अपनी एक सहायक को उसपे नजर रखने के लिए बोलती है । छोटी उम्र की लड़कियों की डिमांड भी ज्यादा है और पैसे भी । मालकिन को बस पैसे ही तो चाहिए । एक बच्ची की सुरक्षा और असुरक्षा से उसे इतना कुछ फरक नहीं पड़ता । किसी की मनःस्थिति समझाना तो जैसे उसके व्यक्तित्व के पहलू में ही न था । किसी को बुखार हो जाता तो भी काम करना पड़ता । " तुझे थोड़ी न कुछ काम करना है, लेटना ही तो है । " वह अक्सर यह बोलकर तबियत खराब में भी काम के लिए बोला करती । बस माहवारी के समय थोड़ी बहुत छूट मिल जाती ।

उसे किसी से कुछ मतलब न था जब तक एड्स न हो सब ठीक है ।

मैं अपने कमरे में बैठी परेशान हुए जा रही थी । दोपहर का ही समय था । कुछ काम धंधा भी न था । खाली पड़ा दिमाग बस उस बच्ची की ही सोचे जा रहा था। इतनी छोटी यहां कौन छोड़ गया ? किसी को दया न आई ?क्या होगा अब इसके साथ

मेरी पहली रात, इस कमरे की गंध, फेंके गए कंडोम और उनके पैकेट, सड़ा सा गद्दा सब कुछ मेरी आंखों के सामने घूम गया। खैर रेखा अपना कमरा ऐसे न छोड़ कर गई थी । लेकिन कितना ही साफ सुथरा रखे ये गंध तो गंध ही रहेगा और एक मासूम से फूल के लिए तो बिल्कुल ही ।

उस बेचारी को तो अभी सही गलत की समझ भी न होगी। और उसके साथ ये सब। मेरा मन एक जगह टिक ही नहीं रहा था और दिमाग बस घूमे जा रहा था।

यूं लग रहा था मानो खुद पर बीता हर क्षण मैं फिर से जी रही हूं और मेरे अंदर क्रोध की एक अजीब सी ज्वाला पनप रही थी जिस पर मैं काबू पाने की कोशिश तो कर रही थी लेकिन हो नहीं रहा था। आक्रोश में मेरे हाथ पैर कांपे जा रहे थे और मन नित क्षण मालकिन को और उस इंसान को कोस रहा था जो इस बच्ची को यहां छोड़कर गया।

दोपहर से शाम हो चली थी। रमा जो कभी वैश्या हुआ करती थी लेकिन अब उम्र बढ़ने की वजह से मालकिन की सहायक थी, उस लड़की के कमरे में ही थी। मैं भी कमरे के बाहर जाकर खड़ी हो गई। वो उस लड़की को तैयार कर रही थी। मेरे मन पत्थर हो चला। आज तो आई ही है यह।और उम्र क्या है इसकी ?

पता नहीं कहां से लेकिन मेरे मन में ममता जग गई। मैंने ठान लिया कि इस लड़की के साथ मैं कुछ नहीं होने दूंगी। मुझे वह अपने जैसी ही लगी। उसे देख मुझे अपने शुरुआती दिन और दुख याद आने लगे। मेरी बहन याद आने लगी।

मैं एक और जिंदगी को बर्बाद होते नहीं देख सकती।

पता नहीं कहां से फिर मुझमें हिम्मत आई और मैने अपने आपको मालकिन के कमरे के बाहर पाया। वह एक कुर्सी पर बैठी हुक्का पी रही थी और पैर सामने पड़ी मेज पर रखे थे।

"बोल " मुझे देखकर उसने कहा।

"म म म मालकिन " मेरा सारा जोश एकदम चला गया और मुझे समझ नहीं आया कि क्या बोलूं।

" वो लड़की, जो रेखा के कमरे में है, अभी बहुत छोटी है। " मैंने मुश्किल से एक वाक्य बनाते हुए कहा।

"तो ? " मालकिन ने इस लहजे में कहा कि मुझे लगा अब मुझे थप्पड़ पड़ने वाले हैं।

"वो बहुत छोटी है मालकिन, सह नहीं पाएगी।" मैंने हिम्मत जुटते हुए कहा।

"तूने सह लिया था न ? "

" लेकिन मैं थोड़ी बड़ी थी और सहना मजबूरी थी।" मैंने थोड़ा अड़ियलपन दिखाते हुए कहा।

मालकिन को शायद यकीन न था कि मैं इतना बोल जाऊंगी।

उसने थोड़ा अविश्वस्नीय ढंग से मुझे देखा और कहा "तुझे

समाज सेवा का कुछ ज्यादा ही शोक चढ़ा हुआ है। पहले रेखा के लिए लड़ रही थी और अब एक और ढूंढ ली। सुन लड़की अगर इस बार तूने यहां लड़ाई की या कुछ भी ऊंच नीच हुई तो मैं तुझे जान से मार दूंगी। इस दुनिया मे कोई नहीं जिसको तेरे रहने या न रहने से फरक पड़े, कोई पूछने भी नहीं आयेगा कि कहां मर गई। अगर जीना चाहती है तो अपने काम से कम रख, मुझे मत सीखा।"

मालकिन की धमकी एकदम साफ थी। ज्यादा टांग अड़ाई तो वह मुझे सच में मार देगी। उसने पहले भी ऐसा किया था। मैंने देखा तो नहीं लेकिन यहां सब बात करते हैं कि इसने एक लड़की को मरवा दिया था जो बार बार भागने की कोशिश कर रही थी और एक बार तो पुलिस तक पहुंच गई थी। वो पुलिस

वाला मालकिन का जानकार निकला और उस लड़की को दोबारा इस नरक में छोड़ गया। जब वह यहां लाई गई तो मालकिन ने उसे बहुत पीटा और अंत में जहर दे दिया।

मुझे अपने साथ ऐसा कुछ नहीं कराना। जिंदा हूं तो यहां से निकलने की उम्मीद है मर गई तो बस जिल्लत भरी जिंदगी ही लेकर मरूंगी। मैं यहां से निकल कर सुकून और इज्जत की जिंदगी चाहती हूं। बबीता नहीं कमला ही होना चाहती हूं। बेशक गरीब ही रहूं लेकिन किसी के मुंह तो न लगना पड़े।

मैं परास्त सी होकर मालकिन के कमरे से लौट आई। शाम के छः बजे जा रहे थे और रमा ने उस लड़की को तैयार कर दिया था। बच्ची ही तो थी वह। न छाती न कमर कुछ भी तो न था सिवाय गुप्तांग के। लेकिन वह तो सबके ही होते हैं न ? फिर आदमी को बच्चियों में क्या दिखता है ? ये इंसानी काम हैं या दरिंदो के ? क्या आदमी का पुरुषार्थ इतना कम पड़ गया है कि खुद को साबित करने के लिए उसे समाज के इस फूल को मसलना पड़े जो अभी खिला भी नहीं है ? क्या इस समाज ने आदमी को इतना पत्थर और भावहीन बना दिया है कि उसे भावों और इंसानियत का अर्थ भी नामालूम पड़ता है ? एक आदमी से सदैव परिपक्वता की उम्मीद रखकर उसकी परवरिश इस ढांचे में करना कि उसका रुदन, उसकी भावनाएं, उसकी अपेक्षाएं सब कुछ उपेक्षित हो जाए और अंत में बस एक पत्थर बचे, यह क्या सही है ?

अगर हम आदमी में थोड़ी औरत डाल दें तो बहुत कुछ अलग हो जाए। लेकिन इस समाज ने ऐसा न किया। किसी के मन में इस तरह की बात ही न आई शायद। समाज ने आदमी से अपेक्षा तो रखी लेकिन उसके मानव होने को उपेक्षित कर दिया और जब वह अपेक्षाओं पर खरा उतरा लेकिन मानव होने पर नहीं तो हमने सारी बुराई भी उसी पर थोप दी।

अब वह मानव नित नित की शिक्षा, नित की मानवता और भावनाएं अपने भीतर समाहित करने में असमर्थ है। और एक परिपक्व उम्र में आकर आग उसे इस शिक्षा और भावनाओं के ज्ञान से अवगत कराने की चेष्टा की जाए तो उसे वह अपने अहम पर ले जाता है। समाज ने उसे विवेक भी नहीं सिखाया। अपने अहम और पुरुषार्थ की अनुभूति के लिए शायद उसे एक ऐसा जरिए चाहिए जिसमें वहीं सब कुछ हो। और इन बच्चियों की भूमिका तब आती है।

कितनी दयनीय स्थिति है न। एक समाज जिसको बनाए रखने के लिए सब मरे जा रहे हैं घुमा फिर कर वहीं समाज सबको भावहीन बना सबकी जिंदगियों से खेल रहा है।

हम सब ही इस समाज रूपी बीमारी से ग्रस्त है। लेकिन शुरुआत से ही यह हमारे जेहन में इस कदर बैठा दी गई है कि इसकी बनाई हुई किसी भी परंपरा, भले ही वह अनैतिक हो, पर हम उंगली उठाने की जहमत ही नहीं कर पाते।

लेकिन आदमी ने ज्यादा समय गुजारा है इस धरती पर, विवेक, मानवता और करुणा उसमें होनी ही चाहिए। इतनी तो कि वह अपने पुरुषार्थ के लिए इन बच्चियों का इस्तेमाल न करे।

यह सब मैं उस बच्ची के कमरे के बाहर खड़ी ही सोच रही थी। इतनी पढ़ी लिखी तो न थी मैं लेकिन कभी कभी मैं ग्राहकों से बात कर लिया करती थी। कुछ लोग तो बहुत बेइज्जती करते और कुछ थोड़ा बहुत बता देते कि घरवाली समझती नहीं मुझे। कुछ के मैं पैसे लेने से मना कर देती बस बोल देती कि कभी जरूरत पड़े तो काम आना। और जिन ग्राहकों की बात मैं थोड़ा ध्यान से सुन लेती वो सौ पचास रूपए ज्यादा भी दे जाते।

मुझे जानना अच्छा लगता था कि बाहर क्या चल रहा है। कभी कभी मैं अखबार भी मंगवा लेती। मेरा अखबार और पढ़ने वाला शोक गया न था।

एक ग्राहक था जो मुझे कभी कभी कहानियों की किताब दे जाता। उस दिन मैं उससे पैसे न लेती थी।

ये कहानियां और अखबार मुझे उम्मीद देते कि सबको बराबरी से जीने का हक है।

लेकिन यहां, उस लड़की के कमरे के बाहर, मुझे यह बात झूठी लगी। कहां है हक ?

इस लड़की को पता भी है कि इसके साथ क्या होगा ?बेचारी। वह रुआंसी हो रखी थी और रमा को बोले जा रही थी कि उसे घर जाना है। रमा भी बोले जा रही थी कि अब यही तेरा घर है। वह नारियल तेल में सिंदूर मिला उसके होंठों पर लगा रही थी, फिर उसने उसी की बिंदी भी लगा दी और थोड़ा थोड़ा गालों पर भी लगा दिया। मुझे खुद पर ही शर्म सी आई कि मैं कुछ न कर पाई। मैं अन्दर गई तो मैने रमा से पूछा कि कौन ले आया इसे यहां, बहुत छोटी है।

"एक रिक्शा वाला लेकर आया। कहीं से उठा लिया था और यहां बेच गया।" रमा ने बेफिक्री से कहा।

वह उसको एक हाथ दूर करके देख रही थी कि कहीं कुछ कमी तो न रह गई।

" एक बड़ा कस्टमर है मालकिन के पास इसके लिए। एक रात के पांच हजार देगा। " रमा ने मेरी तरफ देखते हुए बोला। लगभग पैंतालीस की होगी वो। इस जगह ने उसकी आंखों से सब छीनकर उनमें एक खालीपन भर दिया है। लगता है वह हर गई है और बस मालकिन के सहारे दो रोटी खाकर अपने दिन काट रही है।

उसकी बात सुनकर मेरा कलेजा भारी हो गया मानो किसी ने पत्थर रख दिया हो। एक रात में तो कोई दरिंदा पता नहीं क्या क्या कर देगा इसके साथ। मैं सोचने लगी कि कैसे बचाया जाए। कोई रास्ता ही न था। कमरे की खिड़की

से नीचे झांककर देखा तो ग्राहकों का समय हो चला था। इस समय तो भागना भी मुश्किल था। कैसे मदद करूं उस बच्ची की।

कोई रास्ता न सूझ रहा था। मैं कमरे में ही इधर उधर चलने लगी। उस बच्ची ने पल भर मुझसे नजरें मिलाई और फिर आंखे नीची करके घर की रट लगा ली। मैं उसके पास जा बैठी। रमा के यहां रहते मैं उसे दिलासा तो न दे सकती थी मगर थोड़ी बहुत बात तो कर ही सकती थी।

"नाम क्या है तुम्हारा ?" मैने थोड़ा प्रेम से पूछा।

उसने रुआंसी सी आवाज में उत्तर दिया "हिमांशी "

"हिमांशी, तुम डरो मत, सब ठीक हो जाएगा " मैने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए बोला और उसके बाल सहलाए। बड़े प्यारे बाल थे।

इसी बीच रमा बोल पड़ी " तू थोड़ी देर इसे देख मैं बाथरूम जाके आती हूं। "

मुझे तो जैसे किस्मत ने मौका दे दिया।

"ठीक है। " मैने कहा।

उसके जाते ही मैने हिमांशी से पूछा कि उसे अपना घर का पता याद है या नहीं।

उसने अपनी मासूम आंखों से मेरी तरफ देखा और धीमी सी आवाज में बोली "रामबाग "।

मकान नंबर तो उसे याद न था लेकिन इतना जरूर था कि उसके घर के पास एक मंदिर है जिसमें पीपल का पेड़ लगा है। और उसके मां बाप की एक सड़क दुर्घटना में मौत हो गई थी। अब वह अपने चाचा चाची के साथ रहती थी।

वह आगे कुछ बता पाती इससे पहले वहां रमा आ गई और मैं उसके पास से उठकर दूर खड़ी हो गई।

अपने कमरे में जाने के लिए मैं मुड़ी ही थी कि मालकिन तकरीबन पचास साल के एक आदमी के साथ अंदर आ गई।

"यह है" मालकिन ने हिमांशी की तरफ इशारा करते हुए कहा।

"हम्म" उस आदमी ने हिमांशी को सर से पैर तक देखकर मुस्कुराते हुए कहा।

मुझे उसकी उम्र देख घिन आ रही थी। उसके एक पैर में थोड़ी लचक थी और आंखों पर मोटा सा चश्मा। पेंट कमीज से वह किसी दफ्तर में काम करता मालूम होता था। उसने एक नजर भर मुझे देखा और मालकिन से पूछा " यह भी है क्या ?" और एक बेहद बेशर्मी वाली हंसी हंस दिया।

मालकिन भी उसकी लय मे हसी और बोली " सब आपका है साहब बस कीमत की बात है "।

मेरा मन तो हुआ कि अभी उसके मुंह पर ही थूक दूं। मालकिन ने आंखों से मुझे कमरे से बाहर जाने का इशारा किया। मैने हिमांशी की तरफ देखा। उसकी नजरें उम्मीद लगाए मुझे ही देख रही थी।

बेचारी को मालूम ही न था कि क्या चल रहा है। लेकिन अब वक्त मेरे हाथ से जा चुका था और मैं कुछ भी न कर सकती थी।

अपनी मजबूरी और किस्मत को कोसती मैं अपने कमरे में आके बैठ गई।

मालकिन भी थोड़ी देर बाद उसके कमरे से निकल मेरे कमरे में आ गई।

"क्यों,आज तुझे धंधा नहीं करना ? " जैसे वह मेरी मजबूरी और मनःस्थिति का मजाक बना रही हो।

मैं उठी और उसके बाजू से निकल नीचे जाकर खड़ी हो गई। मेरी आंखों में बेबसी के आंसू थे। उस आखिरी नाकामयाब भागने की कोशिश के बाद मुझे

पहली दफा लगा कि बस अब और नहीं। मुझे यहां से निकलना है और हिमांशी को भी निकलना है। इस तरह मैं बेबसी से नहीं जी सकती।

ग्राहक आने शुरू हो गए थे। एक मेरे पास आया और मैं उसे ले ऊपर आ गई। हिमांशी के कमरे के आगे से गुजरी तो उसके रोने की आवाज सुनाई दी। और मैं आधी रात कभी उसके रोने की, कभी चिल्लाने की आवाज सुनती रही। वह रात मेरी जिंदगी की सबसे भयावह रात थी जो मेरे मन के अंदर घर कर गई थी। शायद मैं कुछ कर सकती थी उसके लिए लेकिन मैने कुछ न किया। मैं उसके कमरे में जाकर उस आदमी को जान से मार सकती थी लेकिन उसके बाद मैं भी न बचती। और फिर दोबारा कभी वह रात हिमांशी की जिंदगी में किसी और रूप में आती।

कुछ तो करना ही होगा। मैं पूरी रात सोचती रही। एक मिनट न सो पाई।

सुबह आते आते जब आंख लगने को हुई तब उस ग्राहक का ध्यान आया जो मुझे कभी कभी किताबें लेकर देता था। वह रोज तो नहीं आता था लेकिन जब भी आता तो मेरे पास ही आता था।

अगर वह एकाध दिन में आ जाए तो मैं उसके हाथों हिमांशी के घरवालों को खबर करवा दूंगी।

बस इसी तसल्ली से मन को शांति मिली। मैं करवट बदलती रही और सुबह के छः बज गए। हिमांशी के कमरे का दरवाजा खुलने की आवाज आई तो मैं भी एकदम से उठकर बैठ गई। थोड़ी देर रुक कर जाऊंगी सोचा। जब मैं गई तो देखा वह बच्ची लगभग बेसुध सी पड़ी दर्द से कराह रही थी। उसकी चद्दर पर खून के निशान थे और उसके कपड़े फटे हुए थे। मैं गई तो वह मुझसे लिपट गई और मुझे कस कर पकड़ लिया। मेरे अंदर जो भी हिम्मत थी सब टूट गई और मैं भी उसके साथ ही रोने लगी।

थोड़ी देर बाद होश संभाला तो मैने उसे दवाई दी और उसे साफ किया। मरहम लगाई और चाय ले आई।

मैने उसे चाय बिस्किट दिया और उसके पास बैठ उसे सहलाती रही। मेरे पास शब्द न थे। उसके तख्त पर टॉफियां रखी थी। मैने उठाई तो वह धीमी सी आवाज में बोली कि उसने दी थी। मैने उन्हें फेंक दिया। बेहया ही था वह आदमी।

मैं उसके पास बैठी कभी उसका सर सहलाती तो कभी हाथ। और वह एकदम गुमनाम सी बैठी रही। ये जगह ही ऐसी है यहां आकर सब गुमनाम ही हो जाते है।

दोपहर तक आते आते उसे जोरों का बुखार हो गया। मालकिन ने नीच मेडिकल स्टोर से दवाई मंगवा कर दी तो थोड़ा बहुत आराम लगा।

एक दो दिन का तो आराम मिलेगा इसे। मुझे यही सोचकर थोड़ी शांति हुई। किस्मत से थोड़े दिन बाद वह ग्राहक भी आ गया और मैने उसे थोड़ी मिन्नत करके मना लिया कि वह हिमांशी के घर इत्तिला कर दे। बदले में मैने पैसे नहीं लिए।

अगले दिन आने का वादा कर वह चला गया। जब आया तो निराशा ही लाया।

हिमांशी के चाचा चाची को उसकी कुछ न पड़ी थी। उनका टका सा जवाब आया " भाई बहन पांच पांच लड़किया पैदा करके चल बसे और पांचों की जिम्मेदारी अब हम पर आ पड़ी। हमारे खुद के चार बच्चे हैं। नौ बच्चे, साथ में माता पिता और दो जन हम। एक मामूली दस हजार की प्राइवेट तनख्वाह में हम कैसे तरह इतने जनों के पेट पालें ? खुद तो मर गए वह लेकिन कुछ छोड़कर न गए ।अच्छी भली तनख्वाह थी भाई की, फिर भी सब खाली ही

मिला ।खर्चे के अलावा कुछ न छोड़ा था। हमारी खुद की तीन बेटियां हैं,आठ लड़कियों का ब्याह हम कैसे करेंगे ? "

"उठा ले गया तो कोई उठा ले गया। हमारे पास इतने पैसे नहीं कि हम उसे छुडाकर लाएं या पुलिस कहचहरी के चक्कर में पड़े। हमें दो वक्त की रोटी ही मुश्किल नसीब होती है । तुमसे अगर बन पड़े तो उसे किसी सरकारी अनाथालय में डाल देना। अगर न बने तो रहने देना लेकिन दोबारा यहां ना आना। हमारे पास इतने पैसे नहीं। "

यह सब सुनकर मैं बस एकटक उस आदमी को देखती ही रही। कुछ लोग अभागे ही होते है खासकर लड़कियां। इनके नाम का तो भगवान हर समय ही सोया रहता है।

वह आदमी शायद मेरी स्थिति भाप गया था और उसने उस दिन किसी तरह का शारीरिक सौदा न किया। वह बस बैठा रहा। थोड़ी देर बाद बोला " मुझे लगता है तुम्हे उस बच्ची को साथ लेकर यहां से भाग जाना चाहिए। " उसने मेरी आंखों में देखते हुए कहा।

"मेरी कोई औलाद नहीं है लेकिन एक बच्ची दर्द मैं समझ सकता हूं। और तुम्हारा भी समझता हूं कि तुम यहां नहीं रहना चाहती। " उस आदमी ने अब मेरे हाथ पर हाथ रख लिया था।

"जब मैं सत्रह साल का था तो घर से भाग आया था। मेरा बाप सरकारी दफ्तर में चाय पानी का काम करता था। वह भी पक्का कर्मचारी ही था। लेकिन दिन भर चाय, पानी, फाइलें पकड़ाने का काम उसे भाता न था। शायद उसके पौरुष को वह कम निचले दर्जे का लगता। दफ्तर पांच बजे बंद हो जाता लेकिन वह रात को दस या ग्यारह बजे घर आता। नशे में धुत्त। पीकर मारपीट करता। कभी रात में मां को घर से निकल देता। कभी उसपे तेल डालकर आग लगा

देता। कभी समान को तोड़ देता। और कभी बस गुस्से में रोटी फेंकता। मुझे भी मारता। मैने जीवन के सत्रह साल ऐसे ही कट दिए थे।

एक दिन लड़ाई हुई और मेरे बाप ने चाकू से मेरी मां का हाथ काट दिया इतना की चार टांके आए। मेरे लिए यह सब सहन से बाहर हो चुका था। मैं मां को कई बार बोलता कि चलो कहीं भाग चलते हैं, मजदूरी करके गुजरा कर लेंगे, वैसे भी तो रोटी के अलावा हमारे पास है ही क्या, सब कुछ तो बाप ने शराब में उड़ा दिया है। लेकिन वह मना कर जाती। उसे समाज ने झुकने के अलावा कुछ सिखाया ही न था। वह पिटती रहती लेकिन मुझे उल्टा न बोलने देती।

इन सबसे तंग होकर एक दिन मैने घर ही छोड़ दिया और यहां आ गया। कुछ दिन मैने सुबह अखबार बांटे, दिन में दिहाड़ी की और रात में चौकीदारी। थोड़े बहुत पैसे बने तो किराए पर कमरा लेकर रहने लगा। धीरे धीरे प्राइवेट कंपनी में नौकरी देखी और अब अपने दिन काट रहा।

मैने कभी शादी न की और न ही मेरी कोई ऐसी इच्छा।लेकिन इंसान मैं अब भी हूं और दूसरे का दर्द भी समझ सकता हूं। तुम चली जाओ यहां से उस बच्ची को साथ लेकर। मुझसे जितनी बन पड़ेगी मैं तुम्हारी उतनी मदद कर दूंगा। "

उस भले आदमी की बात सुन मुझे लगा कि इंसानियत शायद अब भी जिंदा है। मेरे मन में एक आस जागी कि मैं भी यहां से निकल सकती हूं। उस बच्ची को भी निकल सकती हूं। थोड़ी हिम्मत सी आई।

मैं उसकी तरफ देखकर मुस्कुराई। इतने सालों में मेरी शायद यह पहली आशावान मुस्कुरआहट थी।

"पुलिस की मदद लें ?" मेरे मन में एकदम से विचार आया।

"और वो लोग तुम्हारी मालकिन के जानकार निकले तो ? " उस आदमी ने कहा।

बात तो सही थी। किसी पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

लेकिन भागे कैसे, ये सबसे बड़ी दुविधा थी। और डर भी था।

अगर पकड़े गए तो दोबारा भागने का मौका नहीं मिलना था।

अंत में शाम का समय ही मुझे सही लगा ।शाम के समय ग्राहकों के लिए नीचे जाकर खड़ा होना पड़ता है वह समय भागने के लिए सही था। बस दिक्कत यह थी कि हिमांशी को बाहर निकलने की जरूरत मुश्किल मालूम होती थी। मालकिन उसके लिए ग्राहक पहले ही तैयार रखने वाली थी जहां तक मुझे समझ थी। मुझे बस ग्राहक के आने से पहले किसी तरह छिपाकर उसे यहां से बाहर निकालना था।

तय हुआ कि वह भला आदमी मुझे पास लगते चौराहे पर मिल जाएगा और मुझे मुझे मेरे गांव की बस में बैठा देगा। मैने जब उससे मिन्नत की कि वह एक दो दिन हिमांशी को अपने पास रख ले को मान गया। पता नहीं क्यों लेकिन मुझे उम्मीद थी कि वह उसके साथ कुछ ऐसा वैसा नहीं करेगा। उसमें मैने वह आग जलती देखी जो इस कोठे की दीवारों से बुझ चुकी थी _ इंसानियत की। वह अपनी जिंदगी में, अपने ही तरीकों में नेक था। अगर समाज की बनाई पगडंडी पर हम नेकी और बदी बांटने लगे तो इस संसार में एक भी नेक आदमी न बचेगा। हर कोई अपने हालातों में, अपनी समझ के अनुसार लगभग ठीक ही फैसला लेता है। कोई नीरा ही दुष्ट व्यक्ति जिसके हृदय ने कभी सच्चा प्रेम अनुभव न किया हो वही अपनी समझ से कोई बद काम कर सकता है।

क्योंकी प्रेम, अगर वह सच्चा है, हमें स्व को भूलना सिखा देता है। हमारी जरूरत, इज्जत और समझ सब प्रेमी की हो जाती है। वह आराधना नहीं

आराध्य हो जाता है। और जिस भी मनुष्य ने प्रेमी को आराध्य मान लिया मानो उसने प्रेम की अंतिम सीढ़ी पर ही कदम रख दिया। और जो व्यक्ति प्रेम की अंतिम सीढ़ी तक चला जाता है उसे पूर्णतया एहसास हो जाता है कि ये प्रकृति ही प्रेम है और प्रेम ही जीवन का सार है। उसे फिर हर चीज में ही प्रेम दिखता है, हर जीव पर ही करुणा आती है। उसके लिए स्वार्थ जैसा कुछ न रह जाता है।

और सच्चा प्रेम _ भले ही आंशिक रूप में सही _ हर व्यक्ति के जीवन में एक न एक बार दस्तक जरूर देता है। अब यह बस उस व्यक्ति का कार्य रह जाता है कि वह अपने हृदय को इस काबिल बनाए रखे कि जब भी प्रेम दस्तक दे वह उसे पहचान सके। अपने अहम को इस दायरे में रखे कि वह प्रेम के दरमियान न आए। बस यही काम है एक व्यक्ति का। खुद को मानवता और जमीन से जोड़े रखना। ताकि जब आत्मिक प्रेम दस्तक दे तो उसके लिए जगह बन सके और वह भी परम आत्म में मिल इस वैश्विक प्रेम की अनुभूति कर सके।

खैर।

वह दिन भी आ गया जब मुझे भागना था या यूं कहें कि कोशिश करनी थी। सफल होना या न होना तो ईश्वर के हाथ में ही था।

मैने दो जोड़ी कपड़े और कुछ पैसे एक प्लास्टिक के थैले मैं डाल लिए। बस यही बहुत था। ज्यादा सामान लेकर चलेगी तो मालकिन को शक हो जायेगा। और था भी क्या मेरे पास ? ऐसे कपड़े जिनमें शरीर का जो अंग ढकना चाहिए वहीं दिखता था। ये धंधा ही बदन का था। क्या करुंगी इसे कपड़ों का मैं जो ढंग से तन को ही न ढक सके ? श्रृंगार के नाम पर मेरे पास नारियल तेल, सिंदूर, पाउडर, इत्र और स्याही के अलावा कुछ न था।

नारियल तेल में ही सिंदूर मिला हम गालों होंठो और आंखों पर लगा लेते। काजल लगा लेते। सिंदूर को ही बिंदी बना लेते। कौन शृंगार पर पैसे खर्च करे ? दो सौ रुपए के लिए ? जब बदन ही बेचना है तो चेहरा किसे दिखता है ?

चिंता के मारे सर दर्द हुआ जा रहा था। मैं पागलों की तरह इधर उधर घूमे जा रही थी। जैसे ही समय लगा मैं हिमांशी के कमरे में गई।

मैने उसे अभी भागने का नहीं बताया। शाम को ही बताउंगी सोचा। बच्ची है, कहीं मुंह से निकल जाए या फिर मालकिन को भनक भी लग जाए तो चीजे नामुमकिन हो जाएगी।

न तो मुझसे कुछ खाते बन रहा था न पीते। पूरा दिन मेरे पैरों में अजीब सी बेचैनी रही और धड़कन सोच से भी तेज। और चेहरे पर अब भी सूनापन। मैं दिखा न सकती थी अपने मन की हलचल। मुझे वह भारी पड़ती।

जैसे तैसे शाम हुई और मैने हिमांशी को बता दिया कि आज हम यहां से निकल लेंगे। लेकिन बिना किसी को बताए। वह मुस्कुरा कर मेरी तरफ देखने लगी। इन दिनों में पहली बार मैने उसकी आंखों में चमक देखी। प्यारी सी बच्ची थी वह।

शाम के सात बजे और मैं एक हाथ मैं पॉलीथिन दबाए और दूसरे हाथ से हिमांशी का हाथ पकड़े धीरे धीरे नीचे आ गई। मालकिन पूजा में व्यस्त थी।

सीढ़ियों से नीचे उतरी तो देखा गली पर करके एक दो दलाल खड़े हैं जो मालकिन के पास आते जाते रहते थे। थोड़ी देर मैं डर के मारे वहीं खड़ी रही। मुझे समझ न आ रहा था कि अब कहां जाऊ। अगर उनके सामने से गई तो अवश्य ही पकड़ी जाऊंगी और उसके बाद बहुत बुरा होगा।

दूसरे रास्ते जाती हूं तो मुझे नहीं पता कि उस भले आदमी के बताए चौराहे पर कैसे पहुंचूंगी। असमंजस थी। हमारे और सामने वाले कोठे की औरतें सड़क पर थी और ग्राहकों का इंतजार कर रही थी। मैं भी हिमांशी को साथ लेकर एक कोने पर जा खड़ी हुई। सोचा जब ये दलाल थोड़ा इधर उधर हो जायेगे तो मैं भाग जाऊंगी।

लेकिन वो अपनी जगह से हिले ही नहीं और मैं ग्राहकों को टालने की कोशिश करती रही। मैं हार मानने ही वाली थी कि तभी पास वाली एक दुकान पर लड़ाई हो गई और सब लोग वहां भाग पड़े। मैने आव देखा न ताव और हिमांशी को लेकर सीधा वहां से थोड़ी दूर चौराहे पर भाग गई। वो भला आदमी बेचारा मोटरसाइकिल लिए वहीं खड़ा था। हम झटपट उसपर बैठे और निकल दिए।

अब तक तो शायद उनको पता लग गया होगा कि हम भाग गए।

लेकिन अब वह मेरा मसला न था। न हिमांशी का। इस जिल्लत भरी जिंदगी को अब मैने अलविदा कह दी थी। अब मेरा इन गलियों से कोई वास्ता न था। उस समय मैने यही सोच लिया था कि दो रोटी कम खा लूंगी लेकिन इस जिल्लत भरी जिंदगी में दोबारा न आऊंगी। हालांकि मुझे लग रहा था कि मालकिन हिमांशी को ढूंढने की पूरी कोशिश करेगी। लेकिन अगर मुझे चीजें अपने हाथ से बाहर जाती लगी तो मैं हिमांशी को लेकर यह शहर ही छोड़ जाऊंगी

फिलहाल मुझे अपने घर जाकर पता करना था कि वह लोग मुझे रख लेंगे या नहीं। मेरे बाप ने या फिर उस चाचा ने अवश्य ही बता दिया होगा कि अब मैं वैश्या हो गई थी। अगर मुझे मेरे घर पनाह मिल जाती है तो मैं हिमांशी को आकर ले जाऊंगी। अगर नहीं मिलती तो आगे का भी कुछ देखना पड़ेगा।

हम पहले उस आदमी के ही घर गए, अंधेरा बहुत हो चला था और बारिश भी होने को थी।

उसका घर एक बहुत भिड़ी सी गली में जाकर था। कॉलोनी का नाम पता तो मुझे मालूम न चला और न वहां कोई बोर्ड ही लगा था। गली इतनी संकरी थी कि मुश्किल से एक कार और एक मोटरसाइकिल निकल सके। नाला वैसे तो बंद था लेकिन कहीं कहीं से टूटा हुआ था और उसकी दुर्गंध हवा के साथ मिल रही थी। वह हमें एक छोटे से मकान में ले गया जिसकी सीढ़ियां बाहर से ही चढ़ती थी। नीचे से देखने में वह मकान बहुत ही संकरा लग रहा था लेकिन अंदर जाकर देखा तो बाहर की अपेक्षा खुला था। दो कमरे, रसोई और एक बाथरूम। घर में समान बहुत कम था लेकिन जितना भी था सब करीने से रखा हुआ था। साफ सफाई भी ठीक थी। एक जगह पुराने अखबार व कुछ किताबें रखी थी।

उसने हमें एक कमरे में बैठाया जहां पहले से दो कुर्सी लगी थी।

कमरे की खाली पड़ी दीवारों पर एक भी पोस्टर न था। कहीं कहीं कोनों में सीलन ने अपने वजूद का एहसास करा रखा था। एक कोने में एक फोल्डिंग पड़ा था और इन दोनों कुर्सियों के सामने एक छोटी सी मेज रखी हुई थी। पुरानी ही थी। छत पर एक पंखा पूरी गति से घूम रहा था। बस इस सबके अलावा कमरे में कुछ न था। एक कोने में बुझी हुई बीडी पड़ी थी। मैं अभी मुआयना कर ही रही थी कि वह पानी ले आया।

"आपको इतनी जेहमत करने की जरूरत नहीं है। हम लोग पहले ही आप पर बोझ बने हुए हैं। " मैने कृतज्ञता और संकोच दोनों के भाव से कहा। मेरा मन अभी कृतज्ञता का आदि न हुआ था। मुझे बार बार उस भले आदमी को परेशान करने का अपराधबोध हो रहा था।

"इसमें परेशानी की कोई बात नहीं है। और तुम दोनों कौनसा सदा के लिए यहां हो। बमुश्किल ही कोई यहां आता है। " उसने हिमांशी की तरफ पानी का ग्लास आगे बढ़ाते हुए कहा।

"तुम चाय बना कर पी लो, रसोई सामने है। मैं तब तक कुछ खाने का ले आता हूं। " कहकर वह बिना उत्तर सुने ही जाने लगा।

"और सुनो ! सीढ़ियों का दरवाजा बंद कर लो और कोई भी आए खोलना मत। मैं आऊंगा तो आवाज दूंगा। "

कहकर वह जाने लगा और मैं दरवाजा बंद करने उसके पीछे चल दी।

चाय बनाने रसोई में गई तो वहां भी बस जरूरत का ही सामान था। दो पतीले, तीन चार स्टील के कप, दो चार डब्बे, तवा,चकला, बेलन, परात, चिमटा। ये सब समान इस्तेमाल हुए काफी समय हो गया था शायद। एक चाय के पतीला तो इस्तेमाल होता लग रह था। कौन में एक छोटा सा फ्रिज भी था जिसमें एक दूध की पॉलीथीन और पानी के अलावा कुछ न था।

मैने चाय चढ़ाई और धीरे धीरे चायपत्ती, चीनी ढूंढकर उसमें डाली। हिमांशी भी मेरे पास ही आकर खड़ी हो गई।

"दीदी, अब सब ठीक तो हो जाएगा न। वो लोग हमें ढूंढ तो नहीं लेंगे? " उसने डरते हुए मुझसे पूछा।

"पता नहीं। शायद मुश्किल ही ढूंढ पाएं। लेकिन कुछ कह नहीं सकते " मैं उसे किसी तरह के धोखे में नहीं रखना चाहती थी।

"हिमांशी " मैने निर्णय किया कि उसके घर की, चाचा चाची की भी उसे सब बता दूंगी " इस आदमी को मैने तेरे चाचा के घर भी भेजा था लेकिन उन्होंने बोल दिया कि वो तुम्हे नहीं रखना चाहते।"

वह कुछ न बोली और बस सर हिला दिया जैसे उसे पता ही हो कि वो लोग उसे नहीं रखना चाहते।

"तो अब ?" उसने सवालिया और उम्मीद भरी नजरों से मेरी तरफ देखा।

"अब हम दोनों ही है बस। हम दोनों ही साथ रहेंगे लेकिन उससे पहले मैं एकबार अपने घर जाकर कोशिश कर लूं।अगर वो लोग मान गए तो हम दोनों मेरे ही गांव जाकर रह लेंगे। खेत में काम करके या मजदूरी करके ही अपना गुजारा कर लेंगे। "

"और अगर वो न माने तो ? "

उसके इस मासूम सवाल का मेरे पास कोई जवाब न था।

"तब देखी जाएगी लेकिन कोठे से तो ठीक रह लेंगे। "

उसने सर हिलाकर हामी दी।

हमने चुप बैठकर ही चाय पी और उस आदमी की बाट देखने लगे। कल का दिन भी मेरे लिए सबसे बड़ी परीक्षा लेकर आने वाला था। अब तक तो मैं किसी भी तरह खुद के अंदर की हिम्मत को थामे हुई थी लेकिन अगर मेरे घरवालों ने मुझे ठुकरा दिया तो पता नहीं मैं खुद को किस तरह संभालूंगी।

अगर ऐसा हुआ तो किसी न किसी तरह संभालना ही पड़ेगा। अब मुझे केवल अपना ही नहीं हिमांशी का भी सोचना था।

[किसी के दरवाजा खटखटाने की आवाज आई। मैं एकदम घबरा गई और हिमांशी मेरे पास आ मेरा हाथ पकड़कर बैठ गई।

"मैं हूं, दरवाजा खोलो " उस आदमी की धीमी धीमी आवाज ही सुनाई दे रही थी। मैने बालकनी से झांक कर देखा तो वह भला आदमी एक हाथ में थैली लिए दरवाजा खटखटा रहा था।

"आई " मैने हाथ से उसकी तरफ इशारा करते हुए बोला।

हमने खाना खाया, मैने बर्तन साफ किए और हिमांशी ने बचा कूचा खाना इक्ट्ठा कर दिया।

सोने के लिए उस आदमी ने हमें फोल्डिंग दे दिया। घर में एक ही फोल्डिंग था और दो गद्दे ही थे। मैने बहुत बोला ही हम गद्दे पर ही सो जायेगे लेकिन वह नहीं माना और दूसरे कमरे में सोने चला गया।

मैं और हिमांशी बहुत देर तक ऐसे ही लेटे रहे, हिसाब किताब लगाते रहे आने वाली जिंदगी का। उसने मुझे बताया कि उसके पापा एक प्राइवेट कंपनी में ही नौकरी करते थे। उसकी मां की भी एक छोटी सी दुकान महिलाओं के कपड़ों की दुकान थी। उसके कोई भाई न था। बस चार बहने ही थी और पांचवीं वो खुद। वह सबसे छोटी ही थी।

उनका गांव में खुद का घर भी था और उसमें पेड़ भी थे जिनपर वो सारी बहने झूला झूलती थी। उसकी सबसे बड़ी बहन ने बारहवीं भी कर ली थी। और बाकी तीन में से एक ग्यारहवीं में थी और दो जुड़वा थी वो दोनों नौवीं में। वो गांव के ही प्राइवेट स्कूल में पढ़ती थी लेकिन अब जब वो चाचा के साथ रहने आ गई थी तो उसने पहले तो उन्हें दाखिला नहीं दिलाया और अब दिलाया तो सरकारी में। वहां एक समय का खाना, कपड़े, किताबों के पैसे भी मिलते लेकिन मास्टरजी पढ़ाते न थे। और वहां के बच्चे भी बड़े शैतान थे।

"दीदी एक बार तो एक लड़के ने मेरी इतनी जोर से चोटी खींची कि मेरा रिबन ही निकल गया।" वह आंख बड़ी करके बड़ी मासूमियत से बताए जा रही थी।

"मेरी क्लास के बच्चे मुझे लंबे बालों वाली चुडैल बोलकर चिढ़ाते यहां और फिर एक दिन मेरी दीदी ने उन्हें मारा तो अब वो मुझसे डरते भी हैं। " वह बोले ही जा रही थी।

बहुत देर की बातचीत के बाद पता चल की जब उसके मां बाप दुकान का समान लेने शहर गए तो उनकी बाइक को किसी ने टक्कर मार दी और उनकी मौत हो गई।

अब चाचा ही था सो वह अपने साथ उसे यहां ले आया था। लेकिन चाची उनको धमका कर रखती। "खर्चा " वह पांचों बहनों को बस ऐसे ही बुलाती। बड़ी बहन से वह सबकी रोटी बनवाती और बाकी से किसी से कपड़े और किसी से बर्तन।

"दीदी मेरी मम्मी ऐसा नहीं करती थी। वो बोलती कि तुम सबको पढ़ा लिखकर अफसर बनाऊंगी फिर कोई नहीं बोली कि हमारा भाई नहीं है "

"चाची तो हर समय गुस्सा ही रहती थी। कभी कभी तो वह मेरी बड़ी बहन को बोलती कि तू भाग जा किसी के साथ। हमारा खर्चा बचेगा। और मुझे बोलती कि तुझे पैदा करने की क्या जरूरत पड़ गई थी जब चार बहने पहले ही थी तो। फालतू है तू तो। मरी क्यों नहीं।

“और जब न मरी तो न सही लेकिन अब मर जा। "

कभी कभी वह बोलती कि तुम सब कहीं चलीं जाओ तो मैं प्रसाद बांट दूं

कभी कभी तो वह खाने को भी टोकती रहती।

"मुझे गर्म जलेबियां बहुत पसंद है एकबार मैने खाने को जलेबी मांगी तो चाची ने बोला कि अब तुम्हारे जलेबियों के दिन चले गए। लायक तो तुम रोटियों के भी नहीं हो पांचों बहने और खानी तुम्हे जलेबी हैं।"

वह बोलती चली गई। मेरा मन भर आया। इस दुनिया में कोई ऐसा नहीं जो दुखी न हो। सबके अपने दुख हैं और हालातों के अलावा उसे वही ज्यादा लगते है।

दुखों की विचित्र बात यह है कि ये चाहे कितने भी कम हों लेकिन हर हाल में ज्यादा ही लगते है। हर किसी के पास अपना दुख है। और हर किसी का दुख विशाल है।

जब समय बीत जाता है और दुख खत्म होता है तब हमें कोई और दुख घेर लेता है। और नए दुख के बाद हमें पुराना दुख कम लगने लगता है। यही वजह है कि हमें बीते हुए लम्हे इतने खूबसूरत और यादगार लगते हैं। और हम वर्तमान को बस दुखों से याद करते है। और भविष्य को _ उन दुखों से दूर की मंजिल। हमने पूर्णतया वर्तमान में जीना अभी नहीं सीखा है।

हम बहते जा रहे हैं, किसी नदी से। बिना उद्गम देखे बस अनंत सागर की ओर। जिस तरह से नदी अपना उद्गम भुला देती है ठीक उसी तरह हम अपने भूत की सीख भुला देते हैं और निरंतर बहते चलते हैं सागर रूपी भविष्य की अनंत गहराइयों की और। लेकिन गहराइयों की थाह भी बस उसने पाई है जिसने अपने ज्ञान और सीख को बचाए रखा है, उन गहराइयों में भी।

खैर। ये मेरी अपनी सोच है जो मैने चंद किताबों और अखबार में बसी कहानियां पढ़ कर जुटाई है। और है तो अंत में एक वैश्या की ही सोच। मेरे अलावा किसे सही लगेगी ? और हास्यप्रद बात ये है कि कभी कभी तो अपनी सोच मुझे खुद ही सही नहीं लगती।

हिमांशी को नींद आ गई थी। मैं भी पूरे दिन की भागदौड़ से थक गई थी। वह आदमी भी सो चुका था शायद क्योंकि उसके कमरे से मुझे कोई आवाज न आ रही थी।

जब मैं सुबह उठी तो सुबह के सात बजे हुए थे। मुझे अपने गांव जाना था। मैं कमरे से निकली तो देखा वह आदमी बालकनी में बैठा है, एक हाथ में चाय का कप और एक में अपना मोबाइल लिए। मेरी चप्पलों की आहट पर उसने मुड़ कर देखा।

पहली बार मैने उसे थोड़ा ध्यान से देखा। एक नीरसता थी उसके चेहरे पर जिसपर मैने पहले कभी ध्यान न दिया था। उसकी शक्ल सुबह शाम हर समय ऐसी ही नीरसता लिए एक सी प्रतीत होती थी।

"मैने चाय बनाई थी, अभी पतीले में ही है, गर्म ही होगी। " वह एक ही वाक्य में बोल गया।

मैने सर हिलाया और रसोई से चाय ले आई। वह कुर्सी पर बैठा था, मैं उसके कुर्सी के बाजू में नीचे बैठ गई।

"आपका बहुत आभार रहेगा हम पर। मैं आपका ये एहसान मरते दम तक नहीं भूलूंगी। " मैं उसकी कर्जवान थी।

उसने मेरी आंखों में देखा और कुछ समय देखता ही रहा। अंत में मैने ही नजरें झुका ली।

"मुझे ग्लानि होती है कि मैं अपनी मां को वहीं छोड़ आया था। बेशक उसकी सोच उसे मेरे साथ आने की इजाजत नहीं दे रही थी लेकिन मुझे उसे उस नरक में नहीं छोड़ना चाहिए था। पिटने के लिए। "

उसने हाथ में लिए कप को धीरे धीरे घुमाते हुए कहा और एक गहरी सांस छोड़ी। मानो वह इस ग्लानि को, इस बोझ को एक सदी से लिए घूम रहा हो।

"तुम दोनों के लिए मैने जो किया वह कहीं न कहीं मेरे उस अपराधबोध को कम करने के लिए था " उसने फिर से मेरी ओर देखते हुए कहा।

मेरे पास शब्द न थे। और न ही मुझे इतना अनुभव था कि मैं इन शब्दों का उत्तर दे पाऊं।

"मैं आज अपने गांव जाऊंगी अगर सब सही रहा तो मैं हिमांशी को भी ले जाऊंगी। अगर नहीं रहा तो मैं कहीं और जाकर अपना कुछ काम देख लूंगी।"

उसने हां में सर हिलाया और हम दोनों ही उगते सूरज को देखते देखते अपनी अपनी दिमागी दुनिया में खो गए।

जब मैं घर के लिए निकली तो नौ बज रहे थे और बरसात होने को थी।

जब मैं आने लगी तो हिमांशी ने मेरा हाथ पकड़ा थोड़ा जोर से पकड़ा और बोली" जल्दी आना।"

उसका वह स्पर्श ऐसा था मानो वह अपने आप को दिलासा दे रही हो कि यहां उसके साथ कुछ गलत नहीं होगा और मैं जल्दी आ जाऊंगी और उसके बाद सब ठीक हो जाएगा। उसके लिए मैं ही परिवार थी शायद। एक ऐसा परिवार जो खुद बिखरा है जो खुद ही अपना अस्तित्व ढूंढ रहा है। अकेले।

“हां, तुम यहां सुरक्षित हो, चिंता न करो मैं जल्दी आऊंगी। “ मैने उसके सर पर हाथ रखते हुए कहा।

गली के एक बाहर से ही मुझे बस मिल गई। बारिश भी शुरू हो चुकी थी और वह मौसम मेरे अंदर और बेचैनी पैदा किए जा रहा था।

मैं सोचे जा रही थी कि अगर मेरा परिवार मुझे अपना लेता है तो जीवन से मुझे और कुछ नहीं चाहिए। उस जगह से निकल कर एक साधारण महिला की तरह रहना, परिवार के साथ, हम जैसे लोगों के लिए बस इन्हीं चीजों के मायने ज्यादा थे। किसी वस्तु की तरह न बेचे जाना, बिना इच्छा के अपना बदन न परोसना, अधिकार होना, बराबरी से देखे जाना, किसी का साथ होना _ यही

सब तो मूलभूत है जीवन में। कितने साल मैं अकेली रही ? दुख सुख में कौन था ? सिवाय रेखा के। वो भी बेचारी मेरे जैसी ही। एक ऐसा भविष्य जिसमें ज्ञात हो कि हम अकेले ही हैं, अकेले ही रहेंगे और पता नहीं मरने पर मुखाग्नि भी कौन देगा _ कितना भयंकर होता है न। एक समय ऐसा भी आता है जब हम थक जाते है, समाज से, परिस्थितियों से, कई बार खुद से ही _ तब सोचते हैं कोई ऐसा हो जो सर पर हाथ रखे, गोदी में सर रखवाकर बोले कि सब ठीक हो जाएगा। हम हैं। बस यही "हम हैं, मैं हूं " सुनने को हम कितना तरस जाते है न। यही अकेले न होने का एहसास, यही "मैं हूं " हममें कितना आत्मविश्वास भर देता है, इस विशाल सी क्षणभंगुर जिंदगी में एक " मैं हूं" ही हमे निरंतर आस देता है।

मुझे लगता है कि एक साधारण आदमी बस यही चाहता है, चाहे उसका सामाजिक व आर्थिक स्थान समुद्र जितना विशाल हो या चींटी जितना छोटा सबकी मानवीय जरूरत बस प्रेम ही है।

और फिर आते हैं मेरे जैसे। जिनको समाज ने अपनी बुराइयों को छिपाने के लिए दरकिनार कर दिया है। और हमे इंसान समझने की चेष्टा तक नहीं कर पा रहा है क्योंकि अगर समाज ने हमें इंसान समझने की चेष्टा की तो इसे अपने उस पहलू की अनुभूति हो जाएगी जिसे ये सालों साल दबाता आया है।

खैर, इसी सोच विचार में मेरा गांव का अड्डा आ गया था और बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी। मैने आनन फानन में रिक्शा ली और अपने घर तक का रास्ता उसे बताने लगी।

देखा आस पास बहुत कुछ बदल गया था। अब खाली प्लाटों की जगह घर थे। थोड़ी बहुत आधुनिकता थी। लेकिन समंदर ज्यों का त्यों था। मैने अपना मुंह धक रखा था। डर लग रहा था। दिल जोरों से धड़क रहा था। मेरा मानव होना और मानवता पर मेरी उम्मीद कायम रहना अब घरवालों पर ही निर्भर था

कि वो अपनाएंगे या नहीं। अगर उन्होंने नहीं अपनाया तो फिर कहां की मानवता ? और कैसा समाज जो रिश्तों को ही अनदेखा कर दे ?

सलवार को नाडे में टांग कर मैने वह समुद्र पार किया और उस घर के गेट के आगे जाकर खड़ी हो गई। मैने डरते डरते दरवाजे को बाहर लगी सांकल से ही बजाया। अंदर से एक लड़की की आवाज आई " कौन है ? "

मैं कुछ जवाब न दे पाई। फिर से मैने दरवाजा ही खटखटाया। इस बार थोड़ी जोर से। वह लड़की झल्ला गई, सबसे छोटे वाली बहन होगी, " भरी बरसात में बोल भी सकते हो कि कौन हो ? " । लेकिन मैने फिर भी दरवाजा ही खटखटाया,इस बार थोड़ी और जोर से।

वह कुछ न बोली, एक बड़ा और पुराना सा काले रंग का छाता लेकर आई और गेट के अंदर से ही मुझे घूरने लगी।

"कौन हो ?" वह लगभग गुस्से में बोली।

"कमला " मैने सोचा न था कि नाम बताना पड़ेगा। और वह भी दरवाजे के बाहर से। मेरे ख्याली पुलावो में मैने सोचा था कि सीधा अंदर जाऊंगी, मां मुझे गले से लगाएगी। रखे भले ही न लेकिन अपनापन तो दिखाएंगे।

"कमला दीदी" वह लड़की बोल पड़ी और जल्दी जल्दी दरवाजा खोलने लगी।

दरवाजा खोलते ही उसने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा और फिर एकदम से गले लग गई।

"बहुत बड़ी हो गई तुम " वह गले लगे ही बोले जा रही थी।

मैने भी सामान नीचे रखा और उसके बाल सहलाने लगी।

"मुन्नी? " मैने थोड़ी देर बाद पूछा।

"हां, पहचान गई तुम" उसने मुस्कुराते हुए कहा।

अभी भी बारिश जारी थी और मैं अच्छी खासी भीग चुकी थी।वह भी।

लेकिन मेरा मन अब प्रेम की ऊर्जा से थोड़ा गर्म था। मुझे तस्सली हुई कि मुझे भी सोचा गया है।

"अंदर आ जाओ, भीग रहे हम " वह थोड़ी देर बाद बोली।

मेरा हाथ पकड़कर वह एक कमरे में ले गई। कमरा छोटा ही था, दीवारों पर सीलन की वजह से सफेद नमक आ गया था, सफेदी झड़ रही थी और कच्चे फर्श ने बारिश की नमी सोख ली थी। पंखा मंद ही चल रहा था लेकिन बारिश के मौसम की वजह से ठंड लग रही थी। कमरे में दो चारपाई थी। लेकिन उन पर कोई न था।

मैने सवालिया नजरों से मुन्नी को देखा।

"तुम्हारे जाने के दो साल बाद ही दादी चल बसी थी। बाप कभी आ जाता है कभी चला जाता है। " उसने जैसे मेरी आंखों में सवाल पढ़ लिया हो।

"और मां,भाई, बहनें ? "

"मां नहा रही है, भाई एक बटन की फैक्ट्री में काम करता है और बहनों की शादी कर दी थी। बाप ने बताया था कि तुम्हे ससुराल भा गया था और तुमने उसके साथ आने से मना कर दिया। किसी को यकीन नहीं हुआ, तुम तो पढ़ना चाहती थी न, तो मां ने साहिबजी से पता कराया। उन्होंने बाप को डरा धमका कर पूछा तो बताया कि तुम किसी जगह काम करने लग गई हो। सबको बात जच गई लेकिन कुछ साल पहले गांव के ही चाचा ने बताया कि उन्होंने तुम्हे कोठे की सड़क पर देखा। मां ने तब से तुम्हारे बारे में कोई बात नहीं की। बहनों की भी उसी समय शादी करदी, कम उम्र में ही, कहीं तुम्हारा पता किसी को लगे और बाद में शादी में दिक्कत आए। मैं ज्यादा छोटी थी तो बच गई

।" वह मेरी तरफ देख कर बोल रही थी जैसे पूछ रही हो कि क्या तुम सही में कोठे पर चली गई

" बाप ने मुझे बेच दिया था, मैं कहीं काम करने नहीं लगी थी, न मेरी मंशा एक अनजाने शहर में काम करने की थी। तुम जानती हो न कि मुझे पढ़ना अच्छा लगता था। मैने बाप के सामने बहुत हाथ पर जोड़े लेकिन वह मुझे बीस हजार में बेच आया। मैने चाचा से भी बोला कि मुझे ले चलो यहां से लेकिन उसने भी न सुनी। " मेरी आंखों में पानी आ गया था।

हम दोनों में से कोई भी चारपाई पर नहीं बैठा थी। बस खड़े खड़े एक दूसरे पर जो गुजरी वो एक क्षण में ही बता देना चाहते थे।

वह मेरे पास आई और मेरा हाथ अपने हाथों में लेकर बोली " तुम्हारे साथ बहुत गलत हुआ दीदी। हमें शक तो था कि बाप ने तुम्हारे साथ कुछ किया है लेकिन जब उसने बताया कि तुमने काम करने का सोचा है तो हमने उस पर यकीन कर लिया। अगर चाचा सच न बताता तो हमें कुछ पता न लगता। "

"तुमने नरक ही गुजारा है " वह बोल ही रही थी कि बॉथरूम से मा की आवाज सुनाई दी "कौन आया है ? "

हम दोनों में से कोई कुछ न बोला। जब वह हौले हौले कमरे में आई तो मैने उसे देखा। पिछली बार जाने से पहले जब देखा था तो वह जवान थी किन्तु अब जैसे उसने सदियां जी ली हों। सिर पर काले सफेद बालों की खिचड़ी थी। उमर और धूप से पका स्याह रंग दूर से ही दुख रहा था। आँखें धंस के अंदर की तरफ चली गई थी। और मुंह की हड्डियों पर मांस का एक कतरा न था। गले की हड्डियों में भी गड्ढे बन गए थे और हाथ पर किसी पैर पुतले के समान। चोटी इतनी पतली की उंगली भी मोटी लगे। बाथरूम से ब्लाउज और पेटीकोट में ही आ गई थी वह। कंधे पर एक गमछा जो तौलिए की तरह इस्तेमाल हुआ होगा।

"कमला " वह मेरी तरफ देखने लगी और मेरे हाथ, मुंह और सर को बार बार अपने कांपते हाथों से न जाने कितनी बार छूती रही। कभी मेरे हाथों को चूमती तो कभी मेरे चेहरे को। मेरे सिर पर ऐसे हाथ फेर रही थी मानो उसने कोई अविश्वनीय चीज देख के हो।

बस इसी तरह के प्रेम के लिए मैं इतने साल तड़पी। मुझे कभी यही नहीं मिला। किसी को मेरे होने से इतना फरक पड़े, मेरा मानव मन बस इसी आस में था।

"मां " मैने भी उसे कस कर गले लगा लिया जैसे इतने सालों की दूरी इसी क्षण में खत्म कर दु। जैसे उसकी जर्जर काया में अपने हिस्से का एक यौवन जोड़ दु और फिर वो सारे पल उसके साथ जी लूं जो मारे किस्मत के मेरे हिस्से से छूट गए थे। मेरे मन में उसकी छवि अब तक एक तीस पैंतीस साल की महिला की ही थी न कि ऐसी वृद्ध।

समय ने मुझसे क्या क्या छीन लिया।

मैं उसके गले लग रोए जा रही थी और वह भी।

कई देर तक हम ऐसे ही रहे।

"तू ठीक है ? " थोड़ी देर बाद जब उसने सुध ली तो पूछा।

"हां " रूंधे गले से मैं बस इतना ही जवाब दे पाई।

"वहां से कैसे आई ?" उसने पूछा।

"मैं भाग आई वहां से "

"मां, जब तुझे पता लग गया था कि मैं कहां हूं तो तू मुझे लेने क्यों नहीं आई ?" मैने हिम्मत करके पूछा। हालांकि जवाब सुनने की मुझमें हिम्मत नहीं थी और मैं एक हद्द तक जवाब जानती भी थी।

"कैसे लेकर आती ? पूरे गांव को पता लग गया था। और रखती कहां ? तेरी भी बेइज्जती होती और मेरी भी। और फिर तू मेरी इकलौती बेटी तो नहीं ना कमला। मुझे सिर्फ तेरा नहीं, तेरे पांच भाई बहनों का भी देखना था। अगर मैं हिम्मत करके तुझे ले भी आती और तू हिम्मत करके यहां रह भी लेती तो तेरी बहनों की शादी में दिक्कत नहीं आती ? "

"कौन ब्याहता उन दोनों को और कैसे ये मुन्नी बिना किसी के ताने सुने आ जा सकती ?" उसने बोलना जारी रखा। "कमला तेरे साथ बहुत गलत हुआ बेटा, लेकिन एक के लिए मैं पांच को तो अनदेखा नहीं कर सकती न। अब तो तेरा ही जीना मुश्किल हुआ लेकिन तू आती तो सबका होता।"

ये सब सुनकर मेरा दिल बैठ गया। कुछ हद्द तक मुझे इन बातों का अंदाजा था लेकिन इंसान की फितरत है प्रेम ढूंढना और जब तक न मिले तब तक ढूंढते रहना।

मैं भी जिद्दी ठहरी फिर से पूछ बैठी " कम से कम आकर मुझे नरक से तो निकलवा देती। "

"और पैसे कहां से लाती ? " वह बोल पड़ी।

"पुलिस में शिकायत करती। " मैने और तर्क दिया।

"और कौन फिरता रोज थाने ? और पुलिस को भी पैसा चाहिए वो कहां से लाती ? सारा तुझ पर खर्च कर तो इनको खाने में क्या देती ?" उसने भी तर्क दिया।

लेकिन मेरे पास अब कोई जवाब न था। ढूंढ भी लेती शायद दिमाग के किसी कौन से मैं लेकिन करती क्या ?

क्या प्रेम तार्किक होता है ? विशेषतः मां का ? प्रेम तो असंभव में भी संभव खोज लेता है न ? बुराई में अच्छाई ढूंढ लेता है। हर हाल में ढाल लेता है खुद को।

तो फिर मेरी मां का ये किस तरह का प्रेम था जिसने समाज को ही हावी होने दिया ? यह किस तरह की जिंदगी है जिसमें रोटी के लिए इंसानों को ही छोड़ दिया जाए ? यह किस तरह का विकास है ? यह किस तरह की विडंबना है ?

मेरा सर इन सवालों के बोझ से चकरा गया था।

"फिर अब ? " मैने डरते डरते पूछा।

"अब क्या ?"

"मैं रुक जाऊं यहां या चली जाऊं ?"

"कमला, तू कभी कभी मिलने आ जाना, मैं मना नहीं कर रही। लेकिन यहां रहते नहीं बन पाएगा।" वह मेरे पीछे की दीवार देखती हुई बोली।

मुझे इस तरह के जवाब की उम्मीद थी लेकिन फिर भी सुनकर दिल टूट गया। यह घर और मां मेरी होकर भी मेरे न थे।

मैं कुछ न बोल पाई। बस यही जवाब सुनने के लिए मैने इतने साल इंतजार किया था क्योंकि मुझे मेरी मां के मुंह से यह सुनना था बेशक मुझे यह पहले से पता था।

मैने अपना सामान उठाया और जाने के लिए मुड़ी।

"दीदी कम से कम चाय तो पीती जाओ, बरसात में भीगी हुई हो ठंड लग जाएगी। " मुन्नी ने आग्रह किया।

लेकिन अब मेरे गले से कुछ न उतरने वाला था। मेरा आत्म सम्मान जो कौड़ियों में ही बचा हुआ था, वह भी आज राख हो गया। और अब वह राख

हवा के साथ साथ हर कोने में अपनी जगह ढूंढ रही थी लेकिन जैसे अब इसके लिए कहीं कोई स्थान नहीं था। ठीक वैसे ही जैसे आंधी के साथ उड़ आई राख के लिए नहीं होता। आंधी खत्म होते ही उस राख को भी खत्म कर दिया जाता है, हर जगह से झाड़ पोंछ दिया जाता है, झाड़ू लगाई जाती है, आंगन को धोया जाता है उस राख का वजूद मिटा दिया जाता है।

मैने उसे अनसुना कर उस घर की दहलीज हमेशा के लिए पार कर दी। अब मैं मूड के कभी यहां नहीं आऊंगी।

मुझे किसी के लिए किसी भी तरह की असुविधा का कारण नहीं बनना। मेरी राय में अगर प्रेम निश्चल है तो यह न सामाजिक बंधन देखता है और न ही तर्क। हर परिस्थिति में कुछ न कुछ ऐसा किया ही जा सकता है जो प्रेम की निश्चलता को साबित कर सके। बेशक ही मेरी मां को एक की बजाय सबका देखना ठीक लगा। लेकिन अगर वह मिलने भी आती तो मन को शांति पड़ जाती। और भले ही वह मिलने न आई हो अगर वह अब मुझे स्वीकार कर लेती तो मैं धन्य हो जाती।

हालांकि मुझे अंदाजा था कि चाचा ने सब बता ही दिया होगा लेकिन सच्चाई की कल्पना करना और सच्चाई सुनना दो अलग अलग चीजें हैं। सच्चाई सुनना किसी नंगे बिजली के तार पर बिना चप्पल के पैर रख देने जैसा है। यह अंदर तक हिला जाती है।

ठीक वैसा ही कुछ मेरे साथ हो रहा था।

मैने घर से निकलकर अड्डे तक की रिक्शा ली और फिर वहां से बस। पूरे रस्ते मैं सुन सी बैठी रही और मेरा दिमाग कोसो मील चलता रहा। अब क्या करुंगी ? कहां जाऊंगी? हिमांशी की भी जिम्मेदारी है। कुछ सोचे न बन पड़ रहा था।

अब उस भले आदमी पर बोझ बन कर कैसे बैठ जाऊं। उसने हमें उस नरक से बाहर निकाल कर ही बड़ा उपकार किया।

खैर, जैसे तैसे मैं उसके घर पहुंची। हिमांशी ने दरवाजा खोला। उसने पहले तो मुझे गले से लगाया और फिर बड़ी बड़ी आशातीत आंखों से मुझे देखने लगी। मैने जब न में सिर हिलाया तो उसके चेहरे की बची कुची चमक भी चली गई।

हम दोनों परास्त से हुए ऊपर आ गए।

वह आदमी काम पर गया था और हम दोनों ही अकेले थे। बारिश अभी भी जारी थी। हिमांशी मेरे लिए चाय बनाने चली गई और मैं अपने भीगे हुए कपड़े बदलने लगी।

हम दोनों एक निरस्त शांति के साथ चाय का कप लिए कमरे में बैठे थे कि हिमांशी की नाजुक सी आवाज ने चुप्पी तोड़ी।

"दीदी अब क्या करेंगे ?"

मुझे भी नहीं पता था कि अब क्या करूं। सारे रस्ते बंद हो गए थे। जब उस नरक में थी तो लग रहा था कि किसी भी तरह मजदूरी करके रह लूंगी लेकिन असल जिंदगी सोच विचार के एकदम उलट होती है। अब जब आन पड़ी तो न रहने का ठिकाना मालूम पड़ रहा, न खाने का और न सोने का। मजदूरी के लिए भी किसी को बोलना ही पड़ेगा, बिना बोले कौन मजदूरी पर रखेगा और बोलने के लिए कोई जानकार तो चाहिए। मैं तो किसी को भी नहीं जानती थी।

ऊपर से मालकिन का भी डर था कि कहीं बाहर निकली और उसको खबर पड़ गई तो ? जितना नरक अब तक देखा था उससे भी बदतर जिंदगी बना देगी वो मेरी भी और हिमांशी की भी।

अकेले रहना इतना मुश्किल होगा सोचा न था। और यहां बाहर भी डर के ही रहना पड़ेगा, ये भी सोचा न था।

हिमांशी उत्तर की बाट जोहे जा रही थी।

"फिलहाल उस भले आदमी का इंतजार करते हैं" मैने उसे थोड़ी हिम्मत बंधाते हुए कहा।

"हम्म"

हम दोनों अपनी आने वाली जिंदगी की अनिश्चितता को सोचते हुए यूं ही बैठे उस भले आदमी का इंतजार करने लगे।

वह शाम को लगभग सात बजे के आसपास घर आया। मैने उसे चाय बना कर दी तो वह मुझे बड़े कृतज्ञ भाव से देखने लगा।

"क्या रहा ?" उसने पूछा

"मेरे लिए वहां कोई जगह नहीं है। " मैने भावहीन उत्तर दिया।

"फिर अब ?"

"समझ नहीं आता। " मैने सच्चाई बताई।

वह चुप हो गया, मुझे भी आगे कुछ बोलने को नहीं मिला। मैं चाय देकर आ गई। वह बालकनी में ही बैठा रहा।

कुछ देर बाद वह कमरे में आया। मैं और हिमांशी अपनी अपनी सोच में गुम थे।

"फिर अब ? " उसने बाहर पड़ी कुर्सी अंदर सरकाई और उसपे बैठते हुए बोला।

"फिर अब " वाला यह प्रश्न मैं पूरे दिन से सोच रही हूं, मैं ही क्यों, हिमांशी भी सोच रही है। लेकिन इस पहाड़ से प्रश्न का मेरे पास, और शायद इन दोनों के पास भी, कोई उत्तर नहीं है।

वह कुछ समय तक चुप बैठा रहा, मैं और हिमांशी भी।

"फैक्ट्री में नौकरी की जा सकती है, छः सात हजार तो दे ही देंगे " उसने सुझाव दिया।

"लेकिन वह सुबह आठ नौ से शाम के छह सात बजे तक चलेगी। और पैसे बढ़ने में भी समय लगेगा। तुम दोनों का कम चल जाएगा क्या इतने में ? " उसने पूछा

मैं हिसाब लगाने लग गई। सबसे पहले तो किराए का एक कमरा ही लगभग दो या तीन हजार का पड़ेगा। तीन हजार राशन पानी के। पैसे तो यहीं खत्म हो गए। फिर हिमांशी को स्कूल भेजने का मेरा जो सपना है वो कैसे पूरा करुंगी।

"नहीं, छह हजार कम है।" मैने उत्तर दिया।

"हां, मुझे तकरीबन बीस मिलते हैं जबकि मैं इतने साल से उसी कंपनी में काम कर रहा हूं। " उसने जवाब दिया।

"फिर और क्या किया जा सकता है ?" उसने पूछा।

"मैं घरों में सफाई का काम कर लूंगी। एक घर से दो हजार भी मिलेंगे तो भी काम चल जाएगा। छह सात घर पकड़ लिए तो भी चौदह पंद्रह हजार रुपए बन जाएंगे। और इसके अलावा जो समय बचेगा उसमें थोड़ा बहुत सिलाई का काम कर लिया करुंगी। "

"हां यह ठीक है लेकिन एकदम से सफाई के लिए कोई नहीं रखेगा, पहले जान पहचान बनानी पड़ेगी । " उसने मुझे वास्तविकता से अवगत कराते हुए कहा।

" वो कैसे बनेगी ?" फिर से एक सवाल खड़ा हो गया।

"तुम एक काम करना, मेरे यहां हफ्ते में एक बार साफ सफाई करने काम वाली आती है, तुम उससे बात करना । वह तुम्हे एक दो घर जरूर दिलवा देगी ।ज्यादातर वह रविवार सुबह को आती है। तुम तक तक यहीं रुक जाओ और जब वो आए तब उससे पूछ लेना। "

"ठीक है " मैने कहा।

"साहब जी, आपके ये जो इतने एहसान हैं हम पे, मैं कभी इनका बदला नहीं चुका पाऊंगी। रिश्ते में तो आप मेरे कुछ नहीं लगते, फिर भी इतना कुछ कर रहे हमारे लिए। वो भी ऐसे समय पर जब मेरे घरवालों ने भी मेरा साथ नहीं दिया। आपकी वजह से ही आज हम दोनों बाहर हैं और आगे जो भी हमारी जिंदगी होगी वो सदैव आपके कर्ज में ही होगी ." मैने हाथ जोड़ते हुए बोला।

"मैं किसी भी तरह से महान नहीं हूं कमला। मैने जो किया वह इंसानियत के नाते किया। और कहीं न कहीं स्वयं की आत्मग्लानि को कम करने के लिए भी। जब तक तुम्हे ढंग का कोई काम न मिले तुम निश्चिंत होकर यहां रह सकती हो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। ये घर एक अकेले बंदे के लिए वैसे भी बड़ा ही है। " उसने जवाब दिया।

वह बोलकर जा ही रहा था कि पीछे मुड़ा और दूसरे कमरे की तरफ इशारा करते हुए बोला " वहां एक छोटी सी अलमारी में काफी किताबें और अखबार रखे हैं। तुम दोनों चाहो तो उनमें में कुछ भी लेकर पढ़ सकती हो। "

इतना कहकर वह जाने लगा। मैने पीछे से आवाज देते हुए रोका "साहब जी, खाना घर ही बना लेंगे हम दोनों, बाहर से लाने की जरूरत नहीं।"

उसने मेरी तरफ देखा, हां में सिर हिलाया "चावल ले आता हूं" बोलकर चला गया।

मैने राहत की सांस ली। उस भले आदमी की वजह से कम से कम बेघर होने का तो डर नहीं वरना रात में हम दोनों कहां भटकते फिरते।

हिमांशी का चेहरा भी पहले से कम उदास लग रहा था। वह मेरी तरफ देखी और मुस्कुरा दी। मैने उसे गले से लगा लिया। बस अब वही मेरा परिवार थी। हम दोनों का खुद के सिवाय और कोई न था।

दिन बीते और रविवार भी आ गया। करीब दस बजे के आस पास वह कामवाली आई। वह भला आदमी भी घर ही था। उसने उसे बोल दिया कि ये दोनों मेरे गांव से आई हैं इन्हें काम चाहिए।

"नहीं, बस मुझे काम चाहिए। हिमांशी तो स्कूल जाएगी। " मैने कहा। अपनी दुख दुविधा में मैं इतनी व्यस्त थी कि मैं साहब और हिमांशी दोनों को ही बताना भूल गई कि मैं हिमांशी को स्कूल भेजने चाहती हूं।

"बाबूजी, दोनों के लिए तो मैं वैसे भी न बोल पाती। एक दो घर हैं मैं वहां इसके लिए बात करके देख लूंगी। लेकिन सिर्फ झाड़ू पोछे का पंद्रह सौ ही तक का ही बोला हुआ उन्होंने। इससे ज्यादा न देंगे। "

वह महिला बोल पड़ी। वह तकरीबन पचास साल की तो होगी। बिल्कुल ही पतली लेकिन आवाज सख्त।

वो भला आदमी कुछ बोलता इससे पहले ही मैं बोल पड़ी " ठीक है माई लेकिन क्या मैं कल ही आपके साथ चल लूं? मुझे काम की बहुत जरूरत है। "

"ठीक है, तू ऐसा कर अपना नंबर मेरे फोन में डाल दे। मैं सुबह जाने से पहले तुझे फोन कर लूंगी। तू मुझे यहीं चौराहे पर मिल जाना। "

"मेरे पास फोन नहीं है। तुम समय बता दो, मैं आ जाऊंगी। "

सुबह आठ बजे का समय निर्धारित हुआ और मेरा सारा दिन नए भविष्य की आशा में यूं ही बीत गया। अगर सामाजिक दृष्टि से देखे तो लोग सफाई के काम पर उत्साहित नहीं होते और न ही इससे आशावान भविष्य की उम्मीद लगाकर बैठते हैं।

लेकिन मेरे लिए ये महज काम नहीं था

रोजी रोटी का जरिए था, अंधेरे से उजले की तरफ गमन का प्रतीक था। नरक से पृथ्वी लोक की ओर आती एक सीढ़ी थी यह।

मैं आठ से थोड़ा पहले ही पड़ोस वाले चौराहे पर चली गई। क्या पता माई पहले ही निकलने लगे।

वह सवा आठ के करीब आई और रिक्शे से हम एक ढाई सौ गज के लगभग बने मकान में पहुंचें। तीन मंजिला मकान था।

मालकिन भी ठीक ठाक थी। वह रहती तो पूरा दिन घर थी लेकिन उससे काम नहीं बन पाता था। दो छोटे बच्चे भी थे। घर में बच्चों के अलावा पांच आदमी थे। वह, उसके सास ससुर, देवर और पति। झाड़ू पोछे के अलावा उसने बर्तन का भी पूछ लिया।

"कौनसी जाति से हो ?"

उसकी बूढ़ी सास ने अनायास ही पूछ लिया। इतने साल कोठे पे बिताने के बाद मुझे अब आभास ही नहीं बचा कि मैं किस जात से हूं। जहां मैं रही थी

अब तक वहां मैं किसी भी जात की नहीं थी। औरत को छोड़ कर। वहां बस औरत होना ही मेरी जात थी।

और औरत होना ही मेरा धर्म।

चमार हूं माइ। दिमाग के कोनो को खंगाल कर मैने कहा।

फिर ठीक है, वह थोड़ी आश्वस्त होके बोली।

वैसे तो चमार कोई अमीर जात नहीं है लेकिन सबसे निचली भी नहीं है।

खैर, मेरा परिवार भी गरीब ही था और मैं अब भी गरीब ही हूं तो क्या ऊपरी जात और क्या निचली। गरीबी में सब बराबर हो जाते हैं और गरीब की जात भी गरीबी ही हो जाती है।

''झाड़ू पोछा ही कर लेना ''बुढ़िया बोल उठी।

शायद वह ओर भी काम कराना चाहती थी, बर्तन वगैरह लेकिन जात सुन कर पीछे हट गई।

"पूरे घर के तीन हजार देंगे, हर मंजिल का एक हजार " मालकिन ने कहा।

मैं कुछ बोलती इससे पहले ही माई बोल पड़ी कि कम हैं मालकिन।

"ढाई सौ गज की कोठी है, हजार रुपए तो सौ डेढ़ सौ गज के लिए होते हैं। ढाई सौ गज में पंद्रह सौ तो बनते हैं। " उसने थोड़ा समझाने और अनुनय के लहजे में कहा।

"ठीक है, तो तुम पैंतीस सौ ले लेना। इससे ऊपर बात न बनेगी। तीसरी मंजिल पर कोई नहीं रहता तो ऐसा करना हफ्ते में दो दिन वहां का कर देना और बाकी दिन बस ये नीचे वाला और पहली मंजिल।" मालकिन ने अंतिम निर्णय के रूप में बोला।

बूढ़ी माई मेरी तरफ देखने लगी तो मैने हां में सर हिल दिया।

काम पक्का हो गया। पैंतीस सौ रूपए महीना। सुबह आठ बजे का समय। ज्यादा से ज्याद दो घंटे का काम होगा। ठीक हैं इतने तो दो घंटे के।

एक दो ओर घरों में भी गई। एक में तो बिना जात पूछे बर्तन का काम भी मिल गया। पैंतीस सौ में ही यहां बात हुई।

और दो हजार एक में। कुल। मिलाकर छह घंटे काम के लगभग नौ हजार मिल रह थे। कोई बड़ा नुकसान नहीं था।

फैक्ट्री में भी इतने ही मिलते। अगले दिन से ही काम पर आना निर्धारित हुआ।

दो चार दिन माई के साथ ही गई। थोड़ा जमने भी लग गई।

उस भले आदमी को भी बोल दिया कि पहली तनख़ाह में ही कोई कमरा देख लूंगी। वह मान गया और मेरा वहां एक महीना रहना भी निर्धारित हो गया।

बस अब चिंता थी तो हिमांशी के स्कूल की।

हमारे पास तो एक भी कागज न था जो।स्कूल वाले मांगते थे। क्या अनाथ बच्चों की पढ़ाई फिर मुमकिन ही नहीं ? इतनी पेंचीदगी देख कर तो।जवाब हां ही लग मुझे।

खैर, एक दिन मैं हिम्मत करके पास के सरकारी स्कूल चली ही गई।

वहां प्रिंसिपल साब मान तो गए कि एकदम ही कागजों की जरूरत नहीं है। तुम धीरे धीरे बनवा लो और पंद्रह बीस दिन में दे देना।

मैने उन्हें अपना बीता कल नहीं बताया था। बल्कि बता दिया था कि हिमांशी मेरी ही बच्ची है और शराबी पति ने मार पीटकर घर से निकाल दिया है। वापिस

सामान लेने जाती हूं तो वह गलियां देने लगता है और घर में घुसने ही नहीं देता।

हिमांशी के बारे में बताया कि पहले वह बिना दाखिले के ही एक छोटे से स्कूल में जाती थी।

जिंदगी ने मुझे इतना झूठ तो बोलना सिखा ही दिया है और अगर मेरे झूठ से हिमांशी की जिंदगी बनती है तो उस झूठ पर मुझे रत्ती भर भी शर्म नहीं।

प्रिंसिपल साब को मेरी बात जच गई। एक तो मैं महिला और ऊपर से असहाय। हमारे समाज में पुरुष की यह सबसे बड़ी कमजोरी होती है। और क्या इसे कमजोरी कहना ठीक है ? नहीं न !

ज्यादातर पुरुष मौका देखते हैं, दया दिखाते हैं और बदले में कुछ मिलने की उम्मीद रखते हैं। और फिर जब उस उम्मीद पर पानी फिरता दिखता है तो वह परेशान करने पर आ जाते है। परेशानी में भी अगर कोई औरत न झुके तो वे उसका जीना हराम कर देते है और एक समय ऐसा आता है जब वे बेशर्मों की तरह मुंह खोलकर या तो ये बोल देते हैं कि तुम में इतनी परिपक्वता नहीं है जो चीजों का मतलब समझ सको या फिर कुछ मुंहफट से सीधा ही अपनी जरूरत के बारे में बता देते हैं।

मैं यह नहीं कह रही कि ये मास्टर ऐसा है लेकिन अब मन में मर्दों को लेकर एक विचार बन गया है।

ज्यादातर ऐसे ही है।

जब मैं कोठे पे थी तो कुछ भले दिखने वाले अमीर लोग भी आते थे जो सेक्स के समय गलियां निकालते थे, कुत्तिया से लेकर राउंड तक बोलते थे, कुछ सिगरेट पीके धुआं मुंह पर फेंकते थे, कुछ बस नंगी करके पेरो से छूटे थे। मैने आदमी के सब रूप इस कदर देख लिए हैं कि मन पत्थर हो चला है।

वो लोग ऐसा बस इसलिए करते थे कि अपनी बीवियों के साथ वो इस तरह का बर्ताव नहीं कर सकते थे। कितनी गंदगी भरी होती है न इंसान के मन में ? इंसान ने सामाजिक नीतियां तो बना ली हैं लेकिन उस जानवर का क्या जो आज भी नीतियों की आड़ में छिपा हुआ है और जब भी उसे मौका मिले तो अपना रूप दिखा देता है। एक तरफ समाज ने नेकी, पाप और पुण्य की खोज कर दी है और इनको एक मापदंड बना लिया है सही और गलत का और दूसरी तरफ आदमी का मन इन सब में बंधना भी नहीं चाहता। उसके अंदर का जानवर, जो कभी जंगलों में रहा करता था आज भी उसी तरह की स्वछंदता चाहता है। और चाहने में बुराई क्या है ? किसने बनाई नेकी और पाप ? किसने बांध दिया इंसान को ?

क्या इंसान को इंसान बनने के लिए इन सब की वाकई में जरूरत है ? क्या संसार चलने के लिए बस इंसानियत और प्रेम काफी नहीं ? फिर क्यों ही बंधे हम ?

खैर, ये तो बीती हुई बातें हैं, फिलहाल तो मास्टरजी ने बोल दिया था कि हिमांशी कल से स्कूल आ सकती है और कागज थोड़े दिन में पूरे किए जा सकते हैं। एकदम ही जरूरत नहीं है। बोले कि यह अधिकार है, शिक्षा का।

लगा तो बड़ा भला यह मास्टर।

शाम को जाकर जब मैंने हिमांशी को बताया तो वह खुशी के मारे मेरे गले लग गई और रोने लगी।

"बस तू मन लगा कर पढ़ाई करना, बाकी मैं देख लूंगी " मैं भी इतना ही कह पाई और उसकी पीठ सहलाने लगी।

भले ही मसला पूरी तरह हल न हुआ हो लेकिन उम्मीद तो जागी। घनघोर अंधेरे में एक किरण ही उम्मीद जगा जाती है कि बाहर बहुत उजाला है और मन फिर इस आस में और मजबूत हो जाता है।

हमारे साथ भी ऐसा ही था।

उस भले आदमी को जब मैने बताया तो वह भी बहुत खुश हुआ।

जिंदगी ढर्रे पर आने लगी।

मैं सुबह उठती, खाना बनाती, टिफिन लगाती।

सबसे पहले वह आदमी काम पे निकलता फिर उसके आधे पौने घंटे बाद मैं और हिमांशी। मैं हिमांशी को उसके स्कूल छोड़ते हुए निकल जाती थी। मैने उसे सख्त हिदायत दी हुई थी कि अपने बीते कल के बार में किसी को न बताए बेशक कोई घनघोर सहेली भी बन जाए, लेकिन किसी को कुछ न बताए। और डरे नहीं।

सबको मेरे बारे में अपनी मां बताए और बाप के बार में भी बताए कि वह शराबी है और उसने हमें घर से निकाल दिय है। मास्टरजी कागजों के बारे में पूछे तो बात दे कि मां लेने तो गई थी लेकिन बाप ने भगा दिया।

सब सही चलने लगा और लगने लगा कि जिंदगी से और कुछ नहीं चाहिए। बस हिमांशी के स्कूल की चिंता रहती थी। कागज कैसे पूरे करूं। उस भले आदमी को जब मैने बताया तो बोला कि आजकल अंगूठा लगा कर भी आधार निकल जाता है। यह तो बहुत सही था।

मैं अगले ही दिन फॉर्म की दुकान पर गई और हिमांशी के साथ साथ अपना भी आधार निकलवा लाई।

अब मुझे यह भी चिंता नहीं रही कि हिमांशी के बाप के नाम में किसका नाम लिखूं।

थोड़ा झूठा होगा लेकिन मां के नाम में मैं अपना ही नाम लिखवा दूंगी।

पता नहीं दुनिया में क्या और कितने बड़े झूठ चलते हैं। मरे हुए इंसान राशन लेते है, वोट देते हैं और कई बार तो पेंशन भी लेते हैं। यह तो फिर भी एक बच्ची के भविष्य का मामला है।

इस समय मुझे बस एक आशा की किरण चाहिए, यह किरण मुझे हिमांशी में मिली। मेरी जिंदगी का मकसद मुझे बस इतना भर लगता _हिमांशी का पढ़ लिख कर अपने पैरों पर खड़े हो जाना।

अगर ऐसा हो पाया तो मैं इस सोच के साथ सुकून से मर सकूंगी कि बेशक खुद के लिए कुछ न कर पाई लेकिन एक जिंदगी तो मैने संवार ही दी।

बेवजह खुद के लिए जीने में मुझे कोई फायदा नहीं दिखता। एक भी जिंदगी को न छुआ तो जिंदगी के मायने ही क्या रह जाते हैं।

बस इसी हिम्मत में मैं एक दिन आधार लेकर हिमांशी के स्कूल पहुंच गई लेकिन मास्टरजी ने जन्म प्रमाण पत्र, जाति प्रमाण पत्र और न जाने क्या क्या गिनवा दिया। मेरे पास कुछ नहीं था और जो आशा जागी थी वो भी खत्म सी होने

मैं हताश होकर लौट आई। कई दिन इसी उधेड़ बन में गुजरे कि कागज कैसे इकट्ठा करूं। हिमांशी के घर से कोई उम्मीद नहीं थी। मैने एक बार दोबारा इस भले आदमी को हिमांशी के घर से उसके कागज लाने के लिए बोला तो वह बेचारा मान गया लेकिन हिमांशी के चाचा चाची ने उसके सारे कागज ही फेंक दिए थे। कुछ न मिला। जब उन लोगों ने इसे अपनाने से ही मना कर दिया,पता

लगने के बाद भी उस नरक जैसी जगह में हिमांशी को छोड़ देने की क्रूरता भी दिखा दी तो कागज तो बहुत मामूली चीज हैं।

उस भले आदमी की सलाह से और बहुत सोच विचार के बाद मैने कस्बे के छोटे प्राइवेट स्कूल में दाखिला दिलाने की सोची। उस भले आदमी ने कहा कि प्राइवेट जगह काम जल्दी हो जाते हैं।

मैं एक दिन काम से आकर उस प्राइवेट स्कूल में गई। कोई शानदार नहीं था, दस कमरों का एक घर ही था। बाहर से स्कूल तो नहीं मालूम पड़ता था। बस एक बोर्ड लग हुआ था _ नवनिर्माण हाइ स्कूल।

मैं प्रिंसिपल के दफ्तर में गई। एक छोटा सा कमरा था वह जिसमें एक आम सी लेकिन थोड़ी लंबी और ऊंची मेज रखी थी जिसके सामने दो कुर्सी पड़ी थी। खिड़की में छोटा सा कुलर लगा था जिससे कमरे में उमस भर गई थी। एक दीवार की तरफ लोहे की अलमारी रखी थी, दूसरी पर महात्मा गांधी की एक फोटो लगी थी और एक पर कुलर। कुल मिलाकर एक भी दीवार खाली न थी।

प्रिंसिपल भी कोई बड़ा हाई फाई आदमी नहीं था। साधारण ही लग रहा था।

मैने फिर झूठ का ही सहारा लिया इस बार यह कि "पति ने मार पीटकर घर से निकल दिया और कागज मांगने गई तो भी खूब मारपीट की और मेरे सामने ही सारे कागज जला दिए। अब बच्ची के आधार के अलावा मेरे पास कुछ नहीं है। मेरे आधार में तो मेरे पिताजी का ही नाम है। घरवाले ने हमेशा ही बोला कि मैं तुझे अपनी औरत नहीं मानता। उसके किसी कागज में मेरा नाम नहीं। "

मैं हाथ जोड़कर मास्टर के सामने खड़ी रही। बस इसी से उम्मीद बची थी और मन में यही भगवान लग रहा था जिसकी हां न से हिमांशी के भविष्य का फैसला होना था। "

"जन्म प्रमाण पत्र तो होगा ?" वह थोड़ी दया दिखाते हुए बोला।

"मास्टरजी, दाई ने जनाया था। किसी अस्पताल में नहीं हुई और उस समय मुझे पता भी नहीं था कि ऐसी भी कोई चीज होती है। अब घरवाले ने निकाला तो समझ आई कि पढ़ाई लिखाई भी कुछ चीज है। बस मन में यही आस है कि जो सब मैने देखा वो मेरी हिमांशी न देखे। इसीलिए स्कूलों के चक्कर काट रही। सरकारी वाले ने तो दाखिला मना कर दिया कि कागज नहीं। अब बच्ची का भार आप पर ही है। आपसे प्रार्थना है एक मौका दे दो। इसकी जिंदगी सुधर जाएगी।"

वह थोड़ी देर तक सोचता रहा। फिर मुझे पांच दस मिनट बाहर जाकर बैठने को बोला। मैं बाहर आकर ऑफिस के सामने पड़े बेंच पर बैठ गई। वह अंदर फोन पर किसी से बात कर रहा था। शायद सलाह मांग रहा होगा कि क्या किया जाए क्योंकि " आई डी तो नहीं हैं आधार के सिवाय ", " अब पढ़ाई को कैसे मना करूं ?", "अकेली औरत है, शक्ल से भी शरीफ लग रही " यह सब मैने उसे कहते सुना।

पंद्रह बीस मिनट बाद उसने मुझे अंदर बुलाया।

" दाखिला तो हो जायेगा, लेकिन तुम्हे तहसील से अपने हवाले से एफिडेविट देना होगा कि यह तुम्हारी ही बच्ची है और इस स्कूल का शिक्षा के अलावा बच्ची से कोई नाता नहीं है। तुम्हे अपना आधार उस एफिडेविट के साथ लगाना होगा और जहां तुम अभी रह रही उसका भी अपने हवाले से बयान देना होगा कि तुम जब भी पता बदलोगी स्कूल में बताओगी।

और हमे अगर कभी लगा कि कुछ गड़बड़ है हम बच्ची को स्कूल से उसी समय निकल देंगे और पुलिस में खबर कर देंगे।"

ऑफिडेविट तक मुझे सब ठीक लगा लेकिन पुलिस का नाम सुनकर मैं थोड़ी डर गई। पुलिस के पचड़े से तो मैं कहीं की नहीं रहूंगी। कोठे पे मालकिन को पता लग गया तो वह आदमी भेज देगी। मुझे वह छोड़ भी दे लेकिन हिमांशी को नहीं छोड़ेगी।

मगर इस रास्ते के अलावा ओर दूसरा कोई रास्ता भी न था। दाखिला जरूरी था। और पुलिस का पचड़ा तो कुछ गलत करेंगे तब होगा न, ऐसा तो हमने कुछ नहीं करना। पढ़ना ही तो है।

बस इसी सोच विचार में मैंने हां भर ली।

ऐसे कब तक डर के मारे रोजमर्रा के काम छोड़ेगे।

दो चार दिन में मैने एफीडेविट वगैरह बनवा लिए और प्रिंसिपल को दे आई।

फीस ज्यादा तो न थी लेकिन हमारे हिसाब से थोड़ी ज्यादा थी। दाखिले के सात सौ रूपए और महीने में ढाई सौ फीस के। अभी तो खैर मेरे पास कुछ नहीं था और मैं उस भले आदमी से मांगना नहीं चाहती थी तो मैने प्रिंसिपल से एक महीने का समय मांग लिया।

"ठीक है,लेकिन समय से ही दे देना। " उसने बस इतना ही बोला।

बस अब मैं थोड़ी निश्चिंत हो गई थी। काम मिल गया था, हिमांशी स्कूल जाने लग गई थी। इस तरह एक महीना गुजर गया और जिंदगी थोड़ी खुशनुमा लगने लगी।

पहली तनख्वाह मिली, हिमांशी की फीस दी, थोड़ा बहुत घर का सामान भी ले आई।

अब बस कमरा ढूंढना ही रह गया था।

धीरे धीरे मैं काम से आते वक्त कमरे की भी पूछताछ करने लग गई।

अभी दूसरे महीने के दस दिन गुजर चुके थे कि एक घर में, जिसमें मैं काम करती थी, मालकिन के देवर ने मुझे पहचान लिया। वह कभी मेरा ग्राहक रहा होगा। हालांकि मुझे उसकी शक्ल याद नहीं। इतने चेहरों में किस किस का चेहरा याद रखूं और वह भी तब जब दिमाग सब भुला देना चाहता है।

वह कभी कभी घर आता था और ज्यादातर बाहर ही नौकरी करता था। मुझे वह पहली बार ही इस घर में दिखा। उसने मुझे बड़ी अजीब सी और भद्दी नजरों से देखा। एक दिन अनायास ही वह बोल उठा कि वह जानता है मैं कौन हूं। मैं कुछ बोलती इससे पहले ही वह चला गया। उस दिन के बाद से वह कुछ बोला तो नहीं लेकिन घूरने का एक क्षण न छोड़ता था।

फिर एक दिन जब घर के सब लोग किसी शादी में गए थे और मैं और वो अकेले ही थे तो बोला " रात किसी होटल में आजा"

"मैने वह काम छोड़ दिया है, मैं वहां ज़बरदस्ती बेची गई थी मर्जी से नहीं थी।" मैने थोड़ी हिम्मत बांधते हुए कहा।

"तो फर्क क्या पड़ता है ? तू इतनी बार सो चुकी है पता नहीं कितने बंदों के साथ, एक बार और कर लेगी तो क्या जाएगा। और वैसे भी मैं पैसे दूंगा।मुफ्त में नहीं बुला रहा।" उसने बेशर्मी से कहा।

"नहीं बाबूजी, मैं उस माजीको छोड़ आई हूं। आप मुझे परेशान न करें।" मैने हाथ जोड़ते हुए कहा।

"अच्छा, तू अब सती सावित्री हो गई। बात ऐसी है कि या तो आज रात मिल ले, मुफ़्त में नहीं, पैसे दूंगा या फिर मैं भाभी को बता दूंगा कि तू किस नरक से आई है ." उसने चेतावनी देते हुए कहा।

"आप बता दें, आप भी गए ही होगे वहां, तभी आपको पता है। "

वह थोड़ा सहमा लेकिन अपने दर्जे को ऊपर करते हुए बोला " मैं कोई नया नहीं गया हूं, सब मर्द जाते हैं। तेरी तरह वैश्या नहीं हूं। "

मैं कुछ बोलती इससे पहले ही वह अपने कमरे में चला गया और एक पर्ची लेकर बाहर आया। उसपे एक मोबाइल नंबर लिखा था।

"मेरा नंबर है, शाम कॉल कर लेना। मैं बता दूंगा कहां आना है। "

यह बोलकर वह छत पर चला गया।

आनन फानन में जैसा मुझसे बन पड़ा वैसा काम करके उस घर से निकल आई। मेरा दिमाग कह रहा था कि इस घर में दोबारा न जाऊं लेकिन मुझे यकीन भी था कि वह घर कुछ नहीं बताएगा।क्या बताएगा कि मैं वेश्याओं के पास जाता हूं?

ऐसा तो कोई आदमी नहीं बताएगा। ऊपर से सब शरीफ बनते हैं। सब अपने पाप अपने अंदर ही छुपा के चलते हैं। कोई उन्हें उजागर नहीं करना चाहता।

मैने उसकी दी वह पर्ची जिसपे उसका नंबर लिखा था वह भी फाड़ के फेंक दी। मैं मर के भी उस तरह के नरक में नहीं जाऊंगी और न ही कुछ ऐसा काम करुंगी कि माजी ताज़ा हो उठे।

और मुझे लगभग यकीन ही था कि वह कुछ नहीं बताएगा। इसी उम्मीद में मैं अगले दिन काम पर भी चली गई। लेकिन वहां का माहौल देख कर मुझे अंदाजा हो चला था कि कुछ ठीक नहीं है।

मेरे अंदर जाते ही भाभी ने मुझे बोला कि बाहर बरामदे में ही खड़ी हो जाओ।

"तुम्हे शर्म नहीं आई क्या ? तुम पता नहीं कहां कहां मुंह मारते फिरती होगी और क्या क्या बीमारी लेकर आई होगी। "

मेरी आंखों में आसूं आ चले थे, यह इस तरह की मेरी पहली बेइज्जती थी। मैने थोड़ नजर उपर की तो देखा कि उसका देवर उसके पीछे ही खड़ा मुझे देख रहा है और मानो आंखों से ही कह रहा है कि देखा, तुम्हारी औकात और मेरी बात न मानने का नतीजा।

"तुम अब दुबारा इस घर के अंदर मत आना, पता नहीं कहां से आई हो और वो माई भी झूठ बोल के हमारे गले तुझे फंसा गई। " वह गुस्से में लाल हो रखी थी।

"मेरी दस दिन की तनख्वाह तो दे दो।" मैं बस इतना ही बोल पाई क्योंकि मुझ मालूम था कि मेरी कोई भी जिरह अब काम नहीं करेगी। मैं इस समाज में सबसे निचले तबके में हूं।

"बेशर्मी की हद्द है " भाभी इतना कहकर अंदर से पैसे लेने चली गई।

उसका देवर वहीं खड़ा रहा और मेरी तरफ देखकर विजयी भाव से मुस्कुराता रहा।

"पकड़ तेरे पैसे और दोबारा यहां शक्ल भी मत दिखाना।" दूर से ही पैसे पकड़ाकर उसने मुझे बाहर जाने का इशारा किया और झट से मेरे मुंह पर ही दरवाजा बंद कर लिया। जैसे मैं कोई इंसान ही नहीं हूं। जैसे वेश्यावृत्ति मैने अकेली ने की। जैसे मेरे बाप का कोई योगदान न था, न ही मुझे खरीदने वाली मालकिन का, न दलालों का, न ग्राहकों का।

क्या मैं ही अकेली थी इसमें ?

सजा फिर मुझ अकेली को ही क्यों मिल रही ? ये सब सवाल मेरे दिमाग में घूमने लग गए।

जैसे तैसे दूसरे घरों का काम निपटा मैं घर पहुंची तो देखा कि हिमांशी और वह भला आदमी जमीन पर ही बैठे हुए है और दोनों के मुंह उतरे हुए हैं।

पूछने पर पता चला कि मालकिन ने उस माई को बुलाकर भी खारी खोटी सुनाई। वह माई यहां आकर पूरे पड़ोस में हंगामा मचा गई की यह भला आदमी भला नहीं है। यह वेश्याओं को रखता है। यह इसकी कोई बहन नहीं है। वैश्या है। पड़ोस वालों ने भी बहुत हंगामा किया और इस भले आदमी को कमरा खाली करने का कह गए।

"यह बाजारू इलाका नहीं है। अच्छे लोग रहते है, अच्छे परिवार रहते है, माहौल खराब होता है, बच्चे बिगड़ जायेगे वगैरह वगैरह।"

जब यही आदमी शराब पीकर अपनी बीवियों को पीटते हैं और जब इन्हीं के बच्चों को आए दूसरे दिन किसी न किसी काम से स्कूल से निकल दिया जाता है तब इनका भला होना पता नहीं कहां चला जाता है।

मुझसे तो कुछ सोचे न बन रहा था। आज का दिन किसी काली भयानक अमावस्या से कम न था।

"मैं यह कमरा कल ही छोड़ रहा हूं। " वह भला आदमी मुंह नीचे लिए ही बोलने लगा।

"अबकी बार मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर पाऊंगा, लोग हर जगह ही बोलोगे और तुम्हारा माजी भी ऐसा नहीं की छिपा रह सके। मैं बार बार कमरे तो नहीं बदल सकता। और न ही मैं ऐसा हूं कि तुमसे शादी रचा के तुम्हे अपने पास ही रख लू। इन जिम्मेदारियों से जुड़ने का मेरे कोई मन नहीं। इंसानियत में मैने तुम्हारा साथ दिया लेकिन मैं खुद भी परेशान नहीं हो सकता। तुम दोनों भी कल अपना सामान ले लेना और कमरा खाली कर देना। " वह एक झटके में किंतु थोड़ी गंभीरत के साथ अपनी बात रखकर वहां से उठ गया।

मेरे और हिमांशी के ऊपर अब आसमान आ पड़ा। एकदम कहां जाए ?

"कल ही ?" मैं धीमी आवाज में बस ये दो शब्द ही अपनी जुबां से निकाल पाई।

"हां, मैं भी छोड़ रहा हूं। कालोनी वालों ने बहुत हंगामा किया है,चार पांच लोग इक्ट्ठा होकर आए थे और पता नहीं क्या क्या बोल रहे थे। मकान मालिक ने बोल दिया है कि जल्द ही खाली करदो। मैं कल ही कर दूंगा। तुम भी कर देना। "

"लेकिन हम जायेंगे कहां ?"

"एक न एक दिन तो तुम्हें खुद का खुद ही देखना पड़ेगा, यह दुनिया ऐसी ही है सो अब ही मान लो कि वह समय आ गया है। "

"लेकिन मैं कमरा ढूंढ ही रही थी। अब एकदम से कैसे ? काम भी छूट ही जाएगा माई को पता लग गया वह हर जगह बता देगी। "

"तुम कोई धर्मशाला देख लो। ज्यादा सुरक्षित जगह तो नहीं है, एक दो दिन में कमरा देखकर छोड़ देना। "

"लेकिन बिना काम कमरे के किराए के पैसे कहां से लाऊंगी ? " मेरी आवाज मुझे ही अजीब लग रही थी। उदास, हताश और बेचैन।

मैं मन ही मन बोले जा रही थी। हिमांशी मेरा हाथ पकड़कर बैठी थी और कातर दृष्टि से मुझे देखे जा रही थी। मैने उसका हाथ अपने हाथ में लिया तो उसकी आंखों में नमी आ गई।

वह आदमी उठकर चला गया था और हम दोनों पता नहीं कितनी देर ही ऐसे बैठे रहे।

जब दिमाग हर दिशा में चल चुका था और सोचने को कुछ नहीं बचा था तो मैने निश्चय किया कि एक समय पर एक ही दिन का देखूंगी। और कल बचे

हुए घरों में से खुद ही काम छोड़ आऊंगी और पैसे ले आऊंगी। मेरा हिसाब ठीक है तो लगभग तीन हजार रुपए मिलेगे। हम शहर ही बदल लेंगे। मैं हिमांशी को लेकर दिल्ली चली जाऊंगी और वहां कुछ देख लूंगी।

एक दो कागज जो बनवाए थे वह भी स्कूल से वापिस ले लूंगी ताकि आगे काम आए

इसी निश्चय से मैं उठ कर खाने की तैयारिया करने लग गई क्योंकि कल का कुछ नहीं पता, पेट भर कर मिले या न मिले।

सुबह उठते ही मैं नहा धो कर काम पर गई और जितने मेरे बनते थे उतने पैसे ले आई। तीन हजार दो सो बने। कुल मिलाकर अब मेरे पास चार हजार के करीब पैसे थे। मैं वापिस आई तब तक वह भला आदमी अपना सामान समेट चुका था। हिमांशी ने भी हमारा एक दो थैलियों में आने जितना जो सामान था वो बांध लिया था।

उसे भले आदमी को तहे दिल से धन्यवाद देकर मैं और हिमांशी स्टेशन की तरफ निकल पड़े।

पूछते पूछते मैने जैसे तैसे टिकट ली और ऐसे ही पूछते पूछते उस प्लेटफार्म पर पहुंच गई जहां रेलगाड़ी आनी थी।

अभी रेलगाड़ी आने में अच्छा खासा समय था। स्टेशन पुराना सा ही था। प्लेटफार्म के एक तरफ पटरी थी और दूसरी तरफ कुछ पुराने से दफ्तर। पटरी से रह रह कर तेज गंध आ रही थी। वहीं प्लेटफार्म पर एक रेहड़ी वाला छोटे छोटे समोसे बना रहा था। और लोग खरीद रहे थे। थोड़ी ही दूरी पर एक पीपल के पेड़ था जिसके चारों और चबूतरा बना हुआ था। मैं मीनाक्षी को लेकर वही जाकर बैठ गई। अभी बैठे थोड़ा ही समय हुआ था कि स्पीकर से घोषणा हुई कि दिल्ली जाने वाली ट्रेन दो घंटे लेट है।

एक तो हम पहले ही यह आ गए थे ऊपर से अच्छा खासा ट्रेन लेट हो गई।

मैं अपने विचारों में ही थी कि हिमांशी की मासूम सी आवाज सुनाई दी " हम वहां जाकर क्या करेंगे, कहां रहेंगे ? "

मालूम तो मुझे भी न था कि क्या करेंगे कहां रहेंगे लेकिन मैने फिर भी उसे आश्वाशन देने के लिए बोल दिया कि ऐसे ही कहीं काम ढूंढ लेंगे और उस भले आदमी ने धर्मशाला का बताया था न, वहां भी कोई धर्मशाला होगी, वही रह लेंगे।

मेरे जवाब से उसके चेहरे पर थोड़ा सुकून आया।

"और मेरा स्कूल ?" उसने फिर पूछा।

"काम मिलने के बाद जल्द ही कोई स्कूल भी देख लेंगे।" हालांकि सोचे समझे अनुसार कुछ होगा भी या नहीं, काम मिलेगा या नहीं, धर्मशाला मिलेगी या नही, कोई छोटा प्राइवेट स्कूल मिलेगा या नहीं इन सबका मुझे भी नहीं पता था। मैं तो बस मन में ये सब सोचकर निकल आई थी कि वहां कोई ग्राहक नहीं मिलेगा। लोगों के घरों में बिना डर के काम कर सकूंगी। थोड़े पैसे ज्यादा मिल जायेगे।

गुजारा हो जाया करेगा।

क्या पता किसी फैक्ट्री में ही सही काम मिल जाए।

लेकिन हिमांशी को। सांत्वना देना मुझे मेरा फ़र्ज़ लगा। जब बातों से ध्यान हटा तो मैने देखा कि एक ठीक ठाक कद काठी, जो दिखने में लगभग चालीस इकतालीस साल की उम्र का लग रहा था, उसी चबूतरे पर आकर बैठ गया था जहां मैं और हिमांशी बैठे थे।

शुरुआत में मुझे कुछ अजीब नहीं लगा। लेकिन जब वो हमें ध्यान से देखने लगा और हमारी बातें सुनने लगा तो मुझे थोड़ा डर लगने लग गया। लगभग आधे घंटे के बाद भी वहीं स्थिति रही तब मैने उस जगह से उठने की सोची। जैसे ही मैने समान ले कर उठने के लिए हिमांशी का हाथ पकड़ा वह आदमी बोल पड़ा।

"रुको "वह बोला

मैं भयभीत नजरों से उसकी तरफ देखने लगी और हिमांशी के हाथ पर मेरे हाथ की पकड़ खुदबखुद तेज हो गई।

"मैने तुम्हारी बातें सुनी " उसने बोलना जारी रखा " तुम्हे दिल्ली जाकर काम चाहिए न, मैं तुम्हे काम दिलवा सकता हूं "

"नहीं, मैं खुद देख लूंगी" मैने थोड़ा साहस दिखाते हुए कहा।

"देखो, मैं कोई ऐसा वैसा काम नहीं बोल रहा। मेरा एक छोटा सा गायक मंडल है जो शादी ब्याह में नाच गाने का आयोजन करता है। अगर तुम्हें ठीक ठाक नाचना आता है तो तुम हमारे मंडल में शामिल हो सकती हो। हमें एक महिला की जरूरत है जो ठीक ठाक नाचती हो।" उस आदमी ने कहा।

नाचना गाना तो कभी भाई बहनों संग मोज मस्ती में किया था, अब तो कहां याद और इस तरह नाचने वाली जिंदगी का मैं क्या करुंगी। लोग तो उसमें भी देखेंगे, बोलेंगे। इज्जत थोड़ी न होगी ? मुझे कोई ऐसा काम चाहिए था जिसमें मेहनत बेशक हो लेकिन जो साधारण हो, जिसमे इज्जत हो, जिससे मैं और हिमांशी इस समाज रूपी ढांचे का हिस्सा बन जाए न कि इसके हाशिए पर खड़ी दो असहाय औरतजात। वह औरत जात जिसे समाज अपने अनुसार उपभोग तो करता है लेकिन समाज में शामिल नहीं।

"बोलो ?" वह आदमी मेरे उत्तर की प्रतीक्षा में था।

"नहीं, मुझे ऐसा काम नहीं करना।" मैने सोच समझकर उत्तर दिया।

"तो तुम करोगी क्या ? "

"उससे तुम्हे मतलब नहीं। " मैं टका सा जवाब देकर चलने लगी तो वह फिर बोल पड़ा

"मेरा कार्ड ले लो। अगर तुम्हें कही काम न मिले तो बताना। मुझे तब भी जरूरत रहेगी तो तुम मेरी मंडली के साथ कम कर सकती हो " उसने एक छोटा सा कार्ड आगे बढ़ाते हुए कहा।

मैने थोड़ा झिझकते हुए उससे कार्ड लिए और कपड़ों वाले थैले में डाल दिया। डर के मारे मैने देखा भी नहीं कि उस पर क्या लिखा है।

कार्ड देने के बाद वह आदमी वहां से चला गया। मैं और हिमांशी फिर से वहीं बैठ गए। हिमांशी मेरी तरफ देखने लगी तो मैने आश्वाशन दिया कि काम मिल जाएगा।

हालांकि पता तो मुझे भी नहीं था कि मिलेगा भी या नहीं।

लेकिन उम्मीद तो थी ही की इतने बड़े शहर में कुछ न कुछ काम मिल ही जाएगा।

खैर, जैसे तैसे समय बीता, ट्रेन आई और हम चार पांच घंटे में दिल्ली पहुंच गए। जब हम पहुंचे तो सुबह के छह बज चुके थे। मैने आस पास के लोगों और फेरी वालो से किसी धर्मशाला का पता किया तो मालूम हुआ कि पास में ही एक धर्मशाला है। कहने को तो स्टेशन पर भी लोग सोए हुए थे, पीने का पानी भी था, शौचालय भी था और खाने पीने के स्टाल भी लगे हुए थे। एक दो दिन मजबूरी में यहां रहा जा सकता है लेकिन हिमांशी और मैं इक्कठे हो तब। अकेले नहीं।

फिलहाल तो हमने नित्य क्रिया से निपट कर कुछ खाया पिया और काम ढूंढने निकल पड़े। लेकिन काम क्या देखे ?

कुछ भी तो मालूम न था। सफाई करें तो किसके घर में ? किसी को भी तो न जानते थे। फैक्ट्री देखे तो भी कैसे मुझे तो यहां किसी फैक्ट्री का पता मालूम न था।

एक महिला थी जो स्टेशन के बाहर परांठे की स्टाल लगा कर बैठी थी। मैने उसे पूछा तो बोली कि फैक्ट्री में लगने के लिए भी जानकारी होना जरूरी है और घरों में भी किसी की मदद से ही काम मिल सकता है ऐसे नहीं।

मैने उससे थोड़ी गुहार की तो वह मान गई।

"मैं ग्यारह बजे तक यह स्टाल लगाती हूं, फिर घर जाऊंगी, तब तो तुम्हे मेरे मोहल्ले की एक महिला से मिलवा सकती हूं जो घरों में काम करती है। वो बताएगी तो देख लेना। मुझे ऐसे काम का मालूम नहीं। मैं तो शाम फिर इसी स्टाल पर रोटियां बेचती हूं। "

मुझे उसका काम भी सही लगा। मैने लागत का पूछा तो उसने बताया कि दस हजार तो लग जायेगे। मेरे पास इतने पैसे न थे।

जब हो जायेगे तब मैं भी ऐसा ही एक स्टॉल लगाऊंगी। वह बीस रुपए का एक परांठा बेच रही थी और सुबह सात से ग्यारह बज तक उसके लगभग पचास परांठे तो बिक चुके थे। और शाम का रह गया वो अलग।

मैने मन में ठान ली कि जब मेरे पास पैसे हो जायेगे तो मैं भी ऐसा ही कुछ काम करुंगी जिससे दिन के हजार दो हजार रुपए बन सके।

ग्यारह बजे तक ही उसने काम किया और फिर उसके बाद वह मुझे और हिमांशी को अपने मोहल्ले उस महिला से मिलवाने ले आई।

जिस महिला से उसने मिलवाया वह भी अधेड़ उम्र की थी। जब स्टाल वाली महिला ने उसे सारी बात बताई कि हम उसे स्टेशन पर मिले थे तो उसने मदद करने से साफ मना कर दिया।

"तुझे पता है ये कौन है, कहां से आई है, कहां रहती है, क्या करती है ? कल को इसने कुछ कांड किया तो कौन जिम्मेदारी लेगा ? चोरी की तो कौन पैसे की जिम्मेदारी लेगा ? तू लेगी?" उसने स्टाल वाली महिला से पूछा।

वह बेचारी चुप हो गई। मैं ही बीच में बोल पड़ी " माई, मैं ऐसा कुछ नहीं करुंगी। तुम काम दिलवा देगी तो मैं यहीं किराए पर कमरा लेकर रह लूंगी। मेरे पति ने मुझे घर से निकाल दिया है और मैं बहुत उम्मीदों के साथ ही यहां आई हूं। एक बार काम दिलवा दो, तुम्हे से शिकायत का कोई मौका नहीं दूंगी।" मैने हाथ जोड़कर मिन्नत करते हुए कहा।

"यहां रहूंगी तो तुम्हे मेरे व्यवहार का भी पता लग जायेगा। औरत ही औरत के काम आती है माई, तुम मदद करोगी तो जिंदगी भर एहसान न भूलूंगी। " मैने मिन्नतें जारी रखी

वो दोनों महिलाएं एक दूसरे को दुविधा से देखने लगी।

"ठीक है, दूसरी महिला ने कहा, मैं कल तुम्हे अपने साथ ले चलूंगी। मुझे मालूम तो नहीं है कि किसी के घर बाई की जरूरत है तुम्हे खुद ही पूछना पड़ेगा।"

मैने हामी में सर हिलाया

"मैं पूछ लूंगी। बहुत बहुत धन्यवाद आपका। मैं आपका ये एहसान जिंदगी भर न भूलूंगी।" मैने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा।

उनसे चलने का समय पूछकर और विदा लेकर मैं और हिमांशी स्टेशन पर ही आ गए। आज के लिए हमने यहीं रुकने का सोचा। जितने ज्यादा पैसे बचे उतना सही है।

अगले दिन सुबह छह बजे ही मैं और हिमांशी माई के घर के बाहर जा बैठे। रात को कभी नींद आई और कभी नहीं। थोड़ा बहुत भी शोर होता तो डर के मारे आंख खुल जाती। हम दोनों एक दुपट्टा बिछा कर उसी पे एक दूसरे से सट कर सोते रहे। सूरज की पहली किरण के साथ ही उठ खड़े हुए और नित्यक्रिया के बाद माई के घर आ गए।

अंदर जाना मैने ठीक नहीं समझा। क्या पता ये लोग इतनी सुबह सुबह उठे ही न हों।

हम लगभग एक घंटा बैठे रहे, सात बजे के करीब माई बाहर आई तो उसने हमें देखा।

"कब से बैठी है " वह थोड़ा हैरान होकर बोली।

"छः बजे से "

"कुंडी क्यों नहीं खटखटाई ?"

"तुम्हे परेशान नहीं करना चाहती थी। " मैने जवाब दिया।

वह थोड़ी देर विस्मय से मुझे देखती रही। तुम दोनों कुछ खा पी लो फिर चलते हैं। वह हमे अंदर ले गई और चाय परांठा ले आई।

जब हम उसके घर से निकले तो आठ बज चुके थे।

सूरज की रोशनी थोड़ी तेज होती जा रही थी और सड़कों पर भीड़ बढ़ती जा रही थी। किसी को किसी से कोई मतलब न था। कोई रोड पर झाड़ू लगा रहा था तो कोई अपनी दुकान में साफ सफाई कर रहा था। बीच बीच में चाय की रेहड़ी मिल जाती थी। झाड़ू की धूल और चाय की खुशबू मिलकर एक सुखद एहसास करा रहे थे कि जैसे ये सिर्फ दिन की ही शुरुआत नहीं थी बल्कि एक नई जिंदगी की ही थी। और थी भी।

अगर काम मिला तो !

हम तीनों इस कॉलोनी में पहुंच गए जहां वह काम करती थी।

कुछ घरों में पूछताछ की लेकिन बात नहीं बनी।

लगभग दस घरों में तो माई साथ गई। बाद में उसके काम का समय हो गया।

बाकी के घरों में मैने अकेले ही पूछताछ की लेकिन बात नहीं बनी

किसी के घर पहले से काम वाली लगी हुई थीं, किसी को जरूरत नहीं थीं तो फिर कोई यूं झिझक जाता कि पता नहीं कौन है। एक दो के कार साफ कराने का काम देने की बोली दो सौ रूपए महीना, लेकिन इतने में क्या होता है ? एक शहर में इतने में काम थोड़ी न चलता है ?

हिमांशी और मैं ऐसे दो बजे तक घूमते रहे, जब बात न बनती लगी तो थक हारकर स्टेशन पर ही वापस आ गए। एक सप्ताह तक हम ऐसे ही आस पास कॉलोनियों में जाकर पूछते रहे लेकिन इसी तरह के जवाब आए। स्टेशन पर भी रहना अजीब लगने लगा था और हताशा से मन बैठा जा रहा था। इतने बड़े शहर में भी बिना जानकारी के कोई काम न था, ताज्जुब की बात थी। कोई भला चंगा जन हां भी भर लेता लेकिन फिर पुलिस जांच के बाद लगाने की बोलता। मैं उस जगह से हां बोल के तो आ जाती लेकिन दोबारा फिर वहां न जाती। पुलिस से डर लगता था। किसी भी वजह से मैं अपने अतीत में वापिस नहीं जाना चाहती थी

पुलिस जांच में मैं पता कहां का दूंगी और मालकिन ने कहीं मेरी गुमशुदगी की शिकायत दर्ज करा दी होगी तो मैं कहीं की नहीं रह जाऊंगी। लेकिन ऐसे स्टेशन पर भी कब तक रहते। पैसे भी खत्म होने को आए थे। थक हारकर मैं दोबारा परांठे वाली माई के पास पहुंची। उसने सुझाव दिया कि यहां एक लेबर चौक है जहां बस मजदूर बैठते हैं। लोगों को निर्माण कार्यों के लिए मजदूरों

की जरूरत हो तो वहां से वो लोग मजदूरों को ले जाते हैं। " तू वहां जाके बैठ जा" ।

उसकी सलाह मानकर मैं और हिमांशी माई के दिए पते पर जाके बैठ गए। धीरे धीरे लोग आने लगे और मोल भाग करने लगे । दिन के छह सौ, पांच सौ या सात सौ । मजदूर सात सौ पे अड़ते और मालिक पांच सौ तक की कोशिश करता ।

छह सौ में बात पक्की होती ।

धीर धीरे वहां बैठे आधे मजदू उठ गए । ज्यादातर महिलाएं और बच्चे ही रह गए थे ।

शायद लोग मानते होंगे कि मजदूरी में भारी भरकम जोर लगता है और वह औरत के बस का नहीं ।

मेरे मन में एकदम से विचार आया कि बात तो यह धंधे वाली ही थी । यहां ऐसे बैठना ! जैसे वेश्यावृत्ति में हम लोग सड़कों पर खड़े होते थे या अपनी खिड़कियों पर ठीक वैसे ही लोग यहां चौक पर बैठे है । कोई चौकड़ी मारकर तो कोई ओकडू बैठा है । यहां भी और वहां भी हम खुद को ही तो बेच रहे हैं। क्या फर्क है? शायद आत्मसम्मान का ? या वो भी नहीं ?

मजदूरों को भी लोग निचले स्तर पे ही मानते हैं न ? समाज के हाशिए पर तो वो भी खड़े हैं ? फिर एक वैश्या में और एक मजदूर में क्या फर्क है ?जो समाज वैश्या को घिन से देखता है और मजदूर को नहीं ?

बेच तो दोनों खुद को ही रहे ।

क्या समाज को लगता है कि वेश्यावृति लोग जान बूझकर करते हैं ?

क्या समाज उन्हीं लोगों से नहीं बना है जो हमारे जिस्म को चंद पैसे में रौंदते हैं ?

अगर समाज इन्हीं लोगों से बना है तो फिर ये दोगलापन क्यों ?

क्यों एक सीमित दायरे में हमें बांध दिया गया है और समाज ने मूल सुविधाओ और सम्मान से ही हमे दरकिनार कर दिया है ?

यह कैसा दोहरा समाज है ? यह कैसी दोहरी मानसिकता है।

मुझे और हिमांशी को भी यहां बैठे काफी देर हो गई थी ।धीरे धीरे औरतें भी छंटने लगी थी। काफी देर बाद एक आदमी हमारे पास आया।

"ये लड़की भी काम करेगी ?" उसने हिमांशी की तरफ देखते हुए कहा तो हिमांशी ने थोड़ा से सहम कर मेरे कंधे पर हाथ रख लिया।

"नहीं, मैं ही काम करुंगी, यह मेरे साथ आएगी लेकिन " मैने कहा।

"ठीक है, कितनी दिहाड़ी लोगी ? "

"छह सौ " मैने उसकी तरफ देखते हुए ही कहा। मुझे कोई मोलभाव नहीं करना था तो मैने बीच का ही रेट बताया।

"ठीक है " उसके चेहरे पर एक चमक सी आई और उसने तुरंत हां भर ली। शायद इसलिए कि और सात सौ मांग रहे और मेरा छह सौ में काम चल गया।

मोलभाव करने की प्रवृति आदमी में निहित ही होती है और जब उसे कुछ चीज दाम से कम मिल जाए तो उस बेहद सुखद अनुभव होता है। भले ही वह अनुभव उसे कोई अपनी जरूरतें अधूरी छोड़ के दे रहा हो।

एक ऊंचाई या आर्थिक स्थिरता के बाद आदमी की मानसिकता उससे निचले दर्जे के लोगों का संघर्ष कम समझ पाती है। लोग भूल जाते हैं कि उनके दस रुपए भी हमारे जैसों के लिए सौ रूपए से कम नहीं।

खैर मुझे ज्यादा जरूरत थी मैंने छह सौ ही बोला।

मैं और हिमांशी मजदूरी पर चले गए। पूरे दिन काम किया और शाम को फिर स्टेशन आ गए। इतना काम कभी किया न था और न ही इतने दिनों से कुछ ढंग का खाया था। स्टेशन पर पहुंचते ही एक कौने में मैं बेसुध सी पड़ गई। हिमांशी ने ही समान देखा और कुछ खाने पीने का भी।

कुछ दिनों तक यही क्रम चला। कभी काम मिल जाता तो कभी नहीं। एक धर्मशाला भी देख ली थी जिसके बड़े से हॉल में रहने के और शौचालय वगैरह मिलाकर सौ रूपए के हिसाब से एक दिन का रहना था। यानी दिन के दो सौ। और लगभग इतने ही खाने पीने में खर्च हो जाते। कभी कभी ज्यादा भी।

बचत में कुछ न आता, हिमांशी के स्कूल की बात तो दूर।

जब एक दिन चौक पर कोई मालिक न लेकर गया तो हम दोनों हिम्मत करके पूछते पूछते पास के सरकारी स्कूल गए। वहां भी उनहीं उसी तरह की प्रक्रिया बताई जैसी अलाहाबाद में बताई थी।इस तरह के कागज न तो हमारे पास वहां थे और न ही अब। प्राइवेट स्कूल यहां हजार रुपए से कम में बात न करते थे। वो भी ऐसे जो यहां के स्तर पर बहुत कम प्रतिष्ठित थे।

हम दोनों यहां आए तो समाज में मिलने और चैन की जिंदगी जीने का सपना लेकर थे लेकिन अब कुछ न बचा था। जो भी कमाते वह लगता ही जा रहा था

एक दिन जब हम रात में ऐसे ही बैठे थे तो हिमांशी ने रुआंसे स्वर में कहा " मैं भी दिहाड़ी ही कर लूंगी। कब तक तुम पर बोझ बनूंगी? ऐसे में न तो स्कूल हो

पा रहा और न ही ढंग की जगह में रह पा रहे। मैने भी कुछ काम करुंगी तो कम से कम एक कमरा लेकर आराम से तो रह सकेंगे। सब तो नहीं पढ़ते न।"

उसकी बातें सुनकर मेरा रोने का मन हो चला था। हमेशा खुद को मैने असहाय स्थितियों में ही पाया है लेकिन हिमांशी की इस बात से मुझे यकायक अपनी बेबसी पर गुस्सा आया। तरस आया। और अनायास ही मेरी आंखों से गंगा की धारा बह चली।

मन खुद को कोसने लगा कि मैं इसके लिए कुछ न कर पाई। की मैं सदा ही ऐसे अनुभवों से गुजरूंगी क्या। संसार के अपार समुद्र जैसे संसाधनों में से मैने बस एक सुई की नोक के बराबर ही तो मांगा है।वो भी नहीं मिल रहा।

क्या इतनी परीक्षा काफी न थी ? मैने मन ही मन भगवान से शिकायत की।

अगर हम लोभ मोह द्वेष सब छोड़कर सोचे तो जिंदगी में बचता क्या है ? लोभ हमे कमाने को मजबूर करता है, मोह सांसारिक व्यक्तियों व वस्तुओं से बांधे रखता है और द्वेष हमारे मन में दूसरों के लिए होड़ पैदा करता है, कि फलां चीज फलां के पास है, या तो उसके पास भी न रहे या फिर मेरे पास भी हो। यह हमारे लिए एक तरह के ईंधन का काम करता है जिसके सहारे या यूं कहें जिसमें उलझ कर हम इसी तरह अपना जीवन गुजार देते हैं।

फिर असल में तो जिंदगी के मायने कुछ बचे ही नहीं न। कम से कम ये सांसारिक चीजें तो जिंदगी के मायने नहीं है। तो फिर ये किस तरह की होड़ है? कौन सा समाज है? क्या बचाना है इस समाज को ? क्यों बांट के रख दिया है इसने इंसान को ऊंच नीच, धर्म अधर्म, अमीर गरीब, इज्जत बेइज्जत, । कौन तय करता है यह सब ?

आखिर इन सब उलझनों में इंसान पड़ा ही क्यों ?

और जब जीवन के मायने ये हैं ही नहीं तो किसने निर्धारित किया कि कोठा बेकार है ? वैश्या बेकार है ? जी तो सब रहे न, तो फिर जीने के अलग अलग ढगों को किसने अच्छे बुरे की श्रेणी में बांट दिया ? यह कैसा समाज है जिसमें संभोग को इतनी बुरी दृष्टि से देखा गया कि इंसान ने अपनी तृप्ति के लिए एक तरह के अड्डे बना लिए, वहां साधन यानी हमें इक्कठा किया और समाज से दरकिनार कर दिया ?

यह कैसा समाज है जिसने अपनी तृप्ति के लिए दूसरों की मजबूरी, विवशता और इच्छा का ही सम्मान न किया ? जिसने मुझ जैसों को बेच दिया, सिर्फ अपनी हवस के लिए और फिर दरकिनार कर दिया। मेरी इच्छा कहां गई और कहां गया मेरा अधिकार ? अगर इस तरह की श्रेणियां समाज ने न बनाई होती तो शायद हम जैसों को मूल मानवीय अधिकारों के लिए इस तरह न फिरना पड़ता। शायद हमारी जिंदगी ठीक हो जाती।

इसी तरह के अनेकों सवाल मेरे मन में घूमने लगे और मुझे अपनी बेबसी पर और रोना आता रहा। यह सब मुझ पर इतना हावी हो गया था कि मैं जोर जोर से क्रंदन करने लगी।

मुझे आभास न रहा कि आसपास के लोग मुझे देख रहे होंगे या किसी तरह की बातें कर रहे होंगे। हिमांशी मेरा हाथ थामे रही और बीच बीच में कुछ बोलती रही लेकिन मुझे उसका एक भी शब्द समझ न आ रहा था। मुझे बस अपने दुखों का विशाल सागर दिख रहा था जिसका मंथन अब शुरू हो गया था।उस मंथन से निकला विष मेरे शरीर के हर अंग में इस तरह समाहित हो रहा था कि मुझे अब आभास न था कि कहां मेरे अंग हैं और कहां विष। मैं सारी ही विष हो चली थी।

बहुत देर के बाद जब सर घूमने लगा, आंखे लाल हो चली, नाक और मुंह से पानी वह चला और वह क्रंदन सिसकियों पर आ गया तो मैने देखा कि हिमांशी भी रो रही थी।

मैने उसे गले से लगा लिया और काफी देर तक यूं ही बैठी रही। आसपास कुछ लोग जमा हो गए थे जो धीरे धीरे चले गए। शायद उनको इस तरह का रोना देखने की आदत होगी। ये जगह ही ऐसी है। कौन खुशहाल आदमी किसी धर्मशाला के हॉल में सबके बीच रहना पसंद करेगा जहां लोग घूरते हों। कोई दुखी और गरीब ही रहेगा। और दुखी इंसान का रोना आम है, गरीब का भी।

काफी देर बाद जब हम दोनों शांत हुए तो पानी पिया और इस तरह बात करने लगे जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसी रात मैने हिमांशी को अपने पास बैठाया और कहा कि मैने फैसला किया है मैं उस आदमी से संपर्क करुंगी जो हमें स्टेशन पर मिला था।

अगर उसके पास वह काम अब भी होगा तो मैं कर लूंगी। अगर पैसे सही मिलते हों तो।

"लेकिन वह काम सही नहीं, लोग इज्जत नहीं करते। " हिमांशी ने फिक्रमंद आंखों से मेरी तरफ देखते हुए कहा।

"यहां एक धर्मशाला के हॉल में अनेकों आदमियों के साथ खुले में सोना भी सही नहीं न हिमांशी। शौच के लिए रात न जाना सुबह तक का इंतजार करना भी सही नहीं न।ये डर भी सही नहीं न कि कही कोई आ जाए और सोते समय कुछ हरकत करे। रोज हवस की नजरों से देखे जाना भी सही नहीं न।रात में सोते समय दुपट्टा सरकने का भी डर सही नहीं। सारी जिंदगी ऐसे ही बीत जाएगी, ये डर भी सही नहीं न। दिहाड़ी न मिले तो खाने का डर भी सही नहीं न। स्कूल न जाने का मौका मिलने का डर भी सही नहीं। यहां कहां इज्जत

है? सोते समय दो लोग घूरते मिलता हैं और उठो तब दो लोग घूरते मिलते हैं। जिंदगी नचा ही तो रही है हिमांशी। असल में नाच लूंगी तो जिंदगी के हाथों थोड़ा कम नाचना पड़ेगा। बस यही फर्क है। इज्जत तब भी नहीं थी और अब भी नहीं है। " मैं एक सांस बोलते जा रही थी। "असल में इज्जत समाज का बनाया हुआ ही एक पहलू है। और जिस समाज में नैतिक तौर पर इतनी खामियां है मुझे उस समाज से इज्जत नहींकरानी और न ऐसे समाज की इज्जत मुझे गवारा है। "

मैने बात खत्म करके हिमांशी की आंखों में देखा तो पाया कि मेरी बात का असर उसपे गहरा हुआ है। उसकी आंखों में फ़िक्र की जगह अब सहमति थी।

मैने कपड़ों वाले थैले से उस आदमी का कार्ड निकाला। सौभाग्य से मिल गया। एक कोने में पड़ा था।

उसे अभी भी एक महिला की जरूरत थी। मैने पूछा तो उसने अगले दिन ही आने को बोला और पता स्थान सब बता दिया।

थोड़ी दूरी पर था लेकिन बस से कम ही समय लगा।

हम समय से थोड़ा पहले ही पहुंच गए।

एक संकरी सी गली में काफी अंदर जाकर यह ऑफिस था। नाले की दुर्गंध इतनी ज्यादा थी कि ऑफिस के अन्दर तक भी आ रही थी। ऑफिस तो क्या था एक 10*10 का कमरा था जिसके बाहर एक टूटा फूटा बोर्ड लगा था " शगुन डांस ग्रुप : शादी ब्याह, जन्मदिन आदि की बुकिंग की जाती है "। अंदर एक पुरानी सी मेज थी जिसके सामने दो पुरानी ही प्लास्टिक की कुर्सी रखी थी। एक दीवार पर छोटी छोटी कई सारी फोटो लगी थी जिसमें अलग अलग शादियों में नाचते हुए लोग थे। कमरे में एक तरफ पर्दा लगा था, उसके पीछे

कुछ सामान था शायद। बाकी दो दीवारें पूरी तरह खाली थी जिन पर सीलन ने अपना हक जमाया हुआ था। एक पुराना स पंखा छत से लटका था और कच्च कच्च की आवाज के साथ घूम रहा था। हवा देने से ज्यादा वह बाहर की गंध को अंदर जरूर खींच रहा था। मेज़ के उस पार रखी कुर्सी पर वही घूरने वाला आदमी बैठा था जो हमें स्टेशन पर मिला था।मैं और हिमांशी मेज के इस तरफ रखी कुर्सियों पर बैठ गए।

"जी, आपसे बीते कल फोन पर बात हुई थी " मैने ही बोलना शुरू किया।

"हां हां, मैने तुम्हे दोबारा फोन किया था लेकिन पता चला कि तुमने किसी टेलीफोन बूथ से फोन किया। "

"हां, फिलहाल मेरे पास फोन नहीं है।" मैने धीमे से कहा।

"कोई नहीं, फिर तुम काम करोगी ? " उस आदमी ने जिज्ञासावश पूछा।

"जी, उसी के लिए आई हूं। एक बार बता दें कि कैसे क्या होता है और मुझे कैसे क्या करना है तो थोड़ी सहूलियत हो जाएगी। "

"देखो, हम कुल तीन आदमी इस बैंड में है, चौथी तुम हो जाओगी। दो आदमी डीजे देखते है, एक मैं हूं और एक तुम रहोगी। पहले हमने कभी ऐसे डांसर नहीं रखी है लेकिन आमदनी अब डांसर रखने में रह गई है।आस पास के जितने बैंड हैं लगभग सबके पास डांसर लड़कियां हैं। "

वह अपनी बात खत्म करते हुए बोला

"तो बस मुझे डांस करना है ?" सब कुछ भी तो किया ही हुआ था मैने, न चाहते हुए ही सही, तो दूसरों के सामने नाचना उसके आगे आसान है। शायद इसी लहजे में मैने बोला। प्रत्युत्तर में वह बोला " देखो बस डांस नहीं है। मैं तुम्हे पहले ही बता देता हूं। रात को काम होता है। ज्यादातर दर्शक आदमी होते हैं। शराब भी चलती है और कई बार अश्लील हरकते भी होती हैं।

हालांकि हमारी कोशिश रहेगी कि कोई तुम तक न आ पाए लेकिन फिर भी पूरी संभावना नहीं है कि कोई तुम्हे नहीं छुएगा। हमारा बैंड का काम खत्म करके तुम जो भी करो, कोई तुम्हे पैसे के लिए रात बिताने को बोले या कोई कुछ, हां न का मसला तुम्हारा है। जब तक तुम बैंड के साथ रहोगी इस तरह की सुरक्षा की जिम्मेदारी मेरी है। लेकिन कोई छुए इसके लिए मैं भले ही मना करूं लेकिन फिर भी थोड़ा बहुत ऐसा हो ही जाता है। वह माहौल ही ऐसा हो जाता है। रात में आदमी के अंदर छुपा राक्षस जाग जाता है और बची कुची कमी शराब पूरी कर देती है। "

उसने अपनी बात जारी रखते हुए कहा " देखो, तुम्हे मैं पहले ही यह सब इसलिए बता रहा कि कहीं तुम एक ही दिन में भाग न खड़ी हो। "

उसने इस तरह बता कर अपनी जिम्मेदारी भी खत्म कर ली और मेरी नजरों में एक तरह से भला भी बन गया। हालांकि इन सब चीजों का अंदाजा मुझे पहले भी था। कुछ अजीब लगा तो यह कि कोठे से बाहर भी लोग पैसे में जिस्म खरीद लेने की चाह रखते हैं। लेकिन उस आदमी की यह बात सुनकर संतोष भी हुआ कि हां या न का मसला मेरा है।

मैने काम के लिए हां भर ली। ना तो मैं सोच के ही नहीं आई थी। अब जब समाज ने अपने बीच जगह देने से मना ही कर दिया है तो मुझे अपना और हिमांशी का पेट भी तो देखना है, इसकी पढ़ाई भी देखनी है। समाज ने मुझे क्या दिया ? मैं इतने दिनों से स्टेशन व धर्मशाला में रह रही। खाने के लाले पड़े हुए। हिमांशी जैसी छोटी सी बच्ची इतनी हताश हो गई। कौनसा समाज हमें देखने आया ?

अब मुझे इस समाज से कोई मतलब नहीं। था तो पहले भी ऐसा ही लेकिन अब मुझे मालूम पड़ गया है कि समाज के इस पदानुक्रम में मेरे जैसे के लिए कोई श्रृंखला बनाई ही नहीं गई है।

फिर ऐसे समाज के लिए, जिसने तुम्हारे वजूद को ही नकार दिया है, किसी भी तरह की चेष्टा क्यों की जाए ?

ऐसे समाज का क्या फ़ायदा जिसने इंसानियत के अलावा हर चीज को अपना लिया है, जिसके लिए इंसान की मूल आवश्यकताओं खाना, पीना, आश्रय और इंसान के मूल अधिकारों आदर, प्रेम, करुणा से बढ़कर पदानुक्रम ज्यादा अनिवार्य है ?

"ठीक है फिर, कल की ही एक बुकिंग है। " उस आदमी ने मुझे जैसे अपने ख्यालों से जगाया।

"ठीक है।" मैने जैसे गहरी नींद से जागते हुए कहा।

"पैसे कितने मिलेगे ?" स्वाभाविक प्रश्न तो रह ही गया था।

"बुकिंग पर निर्भर करता है। कोई निश्चित राशि नहीं है। एक बुकिंग के मैं तुम्हे दो हजार दे दूंगा। अगर कोई बड़ी बुकिंग हुई तो ज्यादा भी दे सकता हूं और छोटी हुई तो कम भी। बाकी जो पैसे लोग तुम्हे अलग से देंगे उसमें से आधा हिस्सा तुम्हारा और आधा मेरा होगा "

मेरे लिए तो दो हजार भी बड़ी बात थी और अलग से चाहे कितने भी मिले वो भी बहुत बड़ी बात थी तो मैने हां भर ली।

आने वाली शाम चार बजे इस ऑफिस पर ही मिलने की बात तय हुई।

"तुम मत करो यह सब। " जैसे ही उस ऑफिस से बाहर निकले तो हिमांशी ने जोर देकर कहा।

जवाब में मै बस मुस्कुरा दी और उसके सर पर हाथ फेरने लगी।

"मैं सही कह रही हूं, तुम मत करो यह सब। जैसा वो आदमी बता रहा था, यह पहले वाले काम जैसा ही है। " उसने मासूमियत से कहा।

उसका इस तरह मेरे लिए फिक्रमंद होना मेरे मन को एक शांति दे रहा था मानो मुझे अपना खोया हुआ परिवार उसी में दिखता हो।

"हिमांशी अपने पास रहने के लिए एक झोपड़ी और रोजमर्रा की जरूरत का थोड़ा बहुत सामान भी होता न तो मैं यह काम करने के लिए न हां बोलती। लेकिन अब स्थिति ऐसी नहीं है। हमारे पास रहने के लिए कुछ नहीं है, खाने का भी नहीं पता। न कपड़ों का ही कुछ पता। जिस तरह हम धर्मशाला के हॉल में सोते है वह भी सुरक्षित नहीं है।

दिहाड़ी मजदूरी से दो वक्त की रोटी तो हो सकती है लेकिन इतना सब नहीं। और तू देख रही है न पढ़ाई कितनी जरूरी है। वह मजदूरी में हम लोग नहीं कर पाएंगे। मैं तो जी चुकी हूं। तुझ में तो है अभी जिंदगी। तू कामयाब हो गई तो मैं अपने आप ही कामयाब हो जाऊंगी। तू अपने मन पर बोझ न ले। मैं ये सब इसलिए कर रही ताकि मरते समय मुझे अफसोस न हो कि मैने किसी के लिए कुछ नहीं किया। "

मैने उसे समझाते हुए कहा।

वह कुछ न बोली बस एक हाथ मेरी कमर के पीछे कर आधी अधूरी सी गले लग गई। जब हटी तो मैने देखा उसकी आंखों में नमी थी।

"पगली, चलता रहता है यह सब जिंदगी भर। " मैने थोड़ा हंस के कहा।

उसने भारी मन से हामी भरी

अगले दिन ठीक चार बजे मैं हिमांशी को लेकर उस ऑफिस पहुंची।

उस आदमी के अलावा वहां तीन लोग और मौजूद थे।

"इस बच्ची को तुम कमरे पर नहीं छोड़ कर आई? " उस आदमी ने पूछा।

"मेरे पास कमरा नहीं और धर्मशाला अकेली के लिए सही नहीं। वहां लोग शराब पीकर सोते है। " मैने जवाब दिया।

"तुम जहां जा रही हो वह जगह भी इसके लिए सुरक्षित नहीं।"

मैं चुप हो गई। बात तो इसकी सही थी लेकिन हिमांशी को रखूं कहां ? मैं यह सब सोच ही रही थी कि वो आदमी बोल पड़ा।

"तुम एक काम करो, इसको मेरे बच्चों के पास छोड़ आओ, मेरी बीवी इसको खाना भी दे देगी और तुम वापिस आओगी तब तक ध्यान भी रख लेगी। मैं इस ऑफिस के ऊपर ही रहता हूं। "

मैने ऐसा ही किया। हालांकि डर भी लग रहा था, किसी के ऊपर भरोसा करने में अब मुश्किल होती थी लेकिन उसकी बीवी सहज और धार्मिक मालूम पड़ती थी। जब मैं हिमांशी को छोड़ने गई तो वह पूजा कर रही थी। दो छोटे छोटे बच्चे भी उसके साथ बैठे थे।

आते समय मैं थोड़े बहुत पैसे हिमांशी को दे आई और उसे बता दिया कि कुछ उल्टा हो जाए तो धर्मशाला ही मिलना, मैं वहां मिल जाऊंगी।

जिंदगी ने दूसरों पर भरोसा न करने की सिख दी थी तो कम ही विश्वाश होता है अब किसी पर।

उसे छोड़ जब मैं ऑफिस आई तो ये आदमी ने मुझे दो जोड़ी कपड़े दिए। लहंगा चोली। चोली बिना बाजू की और गला इतना गहरा की पहनो या न पहनो कोई फर्क न था। लहंगा घुटनों तक का। एक का रंग सुर्ख लाल और दूसरे का नीला।

दोनों ही ऐसे थे। दिखने में भड़काऊ, असभ्य और अभद्र।

मैने उसकी तरफ थोड़ा आश्चर्य से देखा तो वह बोल उठा

"यही चीजें चलती हैं। पैसे भी इनसे ही आते है। "

"ठीक" मैं इतना ही कह पाई। समाज की मानसिकता शायद इस तरह की है कि संभोग से परे हर अभद्र शब्द, पहनावा, संदेश, भावना व इरादा जायज है। औरत मात्र संभोग की वस्तु नहीं अपितु मौज मस्ती का साधन भी है। और संभोग अगर खुले में किया जाए तो वह गलत है, बंद में किया जाए तो सही है। पैसों में किया जाए तो भी सही है बशर्ते वह छिपा कर किए गया हो और समाज की झूठी मर्यादा पर उससे कोई आंच न आए

ये सब चीजें देखकर मेरे मन में समाज के प्रति कुछ न रह गया था। जो इस समाज में बसने की एक चाहत थी वह जा चुकी थी और जो थोड़ी बहुत बची थी,लग रहा था, वह भी चली जाएगी।

अब मन में मानवता के अलावा कोई धर्म न था, कोई समाज न था।

एक तिपहिए में बैठ हम चार जन बुकिंग की जगह पहुंचे। एक शादी थी। कम ही बजट की। साथ गए तीनों आदमियों ने डीजे सेट किया और मैं उसी घर में बने गुसलखाने में कपड़े बदल आई। मेकअप के नाम पर लिपिस्टिक और बिंदी भी वहीं से लगा आई और दुपट्टा ओढ़ एक कोने में बैठ गई।

रात का समय हो चला था, अंधेरा छा गया था लेकिन डीजे और शादी की लाइट में अब भी दिन ही लग रह था।

मैं एक कौन में बैठी सब कुछ बारीकी से देख रही थी। डीजे के पास कोई औरत न थी। सब मर्द थे। सबने शराब पी रखी थी। स्टेज के नाम पर चार तख्त बिछा रखे थे जिनके पीछे डीजे रखा था। ऑफिस वाला आदमी डीजे में अलग अलग गाने बजा कर देख रहा था।

मुझसे थोड़ी दूरी पर लड़कों का एक झुंड खड़ा था जो मुझे देख रहा था और फिर शायद कुछ बात करके हंस रहे थे। मैं थोड़ी असहज हो गई थी लेकिन अपनी ही जगह पर जमी बैठी रही।

डीजे सेट हुआ तब तक तकरीबन नौ बज चुके थे। गाने बजे और लोग नाचने लगे। कई लड़के और कुछ बड़ी उम्र के लोग भी मुझसे आकर पूछ चुके थे कि तुम कब नाचेगी। मैं ऑफिस वाले आदमी का इंतजार कर रही थी। जब वह बोलेगा तभी मैं नाचूंगी।

लेकिन मैने उनको कोई जवाब न दिया। मुंह से जुबान ही न फटी।

"अजीब नचनिया है " एक आदमी इस लहजे में बोल के गया कि मुझे गाली लगी।

कोई आकर एकदम हाथ पकड़कर नाचने लगता। तो कोई दुपट्टा उतरने की सलाह देने लगता। कोई पूछता कि रात में भी चलती हो क्या। जब मैं बहुत व्याकुल हो गई तो ऑफिस वाले आदमी ने मुझे स्टेज पर बुल लिया।

उसने डीजे की आवाज में ही मेरे कान में चिल्ला कर कहा " मैं सोच रहा था थोड़ी ओर रात हो जाती तब शुरू करते। भीड़ बढ़ेगी और ऊपर के पैसे भी। लेकिन तुम वहां कोने में बैठी परेशान दिख रही थी। देखो ये सब काम का हिस्सा है। तुम अभी डांस शुरू कर दो। थोड़ा लट तक कर लेना। "

मुझे घबराहट हो रही थी और समझ नहीं आ रहा था कि कैसे नाचना शुरू करूं। बस भाई बहनों संग ही कभी नाची होंगी। उसके बाद से सब छूट गया था और इस तरह के कपड़ों में कैसे नाचूं ?

दुप्पटा हटाने के बजाय मेरी उस पर पकड़ और तेज हो गई और मेरे हाथ पैर उसी जगह जम गए मानो मैं मिट्टी हो गई हों।

और मन जड़ हो गया हो। न हिलते बन रहा था और न ही सोचते। बस एक जगह खुद को दुपट्टे से जकड़े खड़ी थी, पीछे से गाने की आवाज आ रही थी और आगे सौ के करीब शराबी लोग ऐसी नजरों से मुझे देख रहे थे मानो उन्हें कपड़ों के पार मेरा नग्न शरीर दिख रहा हो।

मैं मुंह नीचे धसाये खड़ी थी कि किसी ने जोर से दुपट्टा छीन लिया। मेरी वह न के बराबर की चोली अब सबको दिख रही थी।

"ओहो, कड़क है" "माल है भाई" "अब महफिल जमेगी" जैसी बातें मेरे कानो तक आ रही थी।

मैने देखा तो एक उनतीस तीस साल का लड़का मेरा दुप्पटा अपनी कमर पर बांधे स्टेज पर ही नाच रहा था। थोड़ी देर बाद वह आगे बढ़ा और मेरी कमर पर हाथ डालकर मुझे अपनी तरफ खींच नाचने लगा। फिर वह नहीं रुका, कभी मेरा हाथ पकड़ के घुमा देता तो कभी कमर से पकड़ कर पास खींचता या कभी एक तरफ झुका देता।

काफी देर तक ऐसा ही चला और स्टेज पर नोटो की संख्या बढ़ती गई। करीब आधा घंटा वह लड़का मेरे साथ नाचा। उसके बाद एक दूसरा आया और उसके साथ साथ तीन चार और आ गए। ऑफिस वाले आदमी ने मना भी किया लेकिन उन लड़कों ने उसकी एक न सुनी।

कभी वो लोग कमर छूते तो कभी छाती। कभी पीछे हाथ लगाते। सबने बेइंतहा पी रखी थी। शराब की बू आ रही थी। मैं जैसे तैसे उनसे छुटकर ऑफिस वाले बंदे के पीछे चली गई। उसने उन्हें समझाया बुझाया और पास के लोगों ने भी हस्तक्षेप किया, तब कहीं जाकर वो स्टेज से नीचे उतरे।

रात के बारह बजे तक ऐसे ही चला।लोगों ने पैसे भी उड़ाए, छुआ भी, रात बिताने का भी बोला, रेट भी पूछा, उम्र भी, छाती का माप भी, " दोगी क्या" जैसे शब्द भी।

जैसे तैसे बारह बजे, डीजे का प्रोग्राम खत्म हुआ और ऑफिस आ गए।

"तुम इतनी रात कहां जाओगी, ऑफिस में ही सो जाओ गद्दा डाल कर, मैं ऊपर से गद्दा ले आता हूं।" मेरे हाथ में पांचहजार रुपए थमाता हुआ वह आदमी बोला "ढाई हजार तुम्हारे नाचने के और बाकी स्टेज पर आए थे"

"हम्मम" मैने नम आंखों और कांपते हाथों से पैसे पकड़े।

वह भी ज्यादा कुछ न बोला। चुपचाप मेरे हाथ में पैसे देकर ऊपर चला गया।

ऑफिस का दरवाजा बंद कर मैं अपने हाथ में रखे उन नोटों को देखने लगी। ये नोट नहीं थे। मेरी इज्जत थी जो तिनका तिनका कर हर बार पैसों में बिक जाती थी। कभी बंद कमरे में, कभी खुले में।

जगह जगह से दुखता शरीर इस बात का प्रमाण था कि अब आत्मा में दुखने को कुछ न रह गया है।

आज का सारा दृश्य मेरी आंखों के सामने तेर रहा था। आंखों से अनियंत्रित बहती धारा इस बात की गवाह थी कि अब मैं मर चुकी हूं। बस यह शरीर बाकी है जिसे समाज ने अब तक नोचा है और आगे भी नाचेगा। यही मेरी तक़दीर है।

और यही मेरी कमाई।

मैं अब तक सोचती रही कि वैश्या होना गुनाह है, जिस जगह मैं रही वो नरक है, बेचा जाना गुनाह है, जबरदस्ती किसी से कुछ कराना गुनाह है। लेकिन मैं गलत थी।

इन सबसे भी बड़ा कोई गुनाह है तो वह है औरत होना। न मैं औरत होती, न मैं बेची जाती, न मुझे समाज में शामिल होने के लिए किसी मर्द की जरूरत पड़ती, न मैं समाज की अपेक्षाओं के प्रति जवाबदेह होती और न ही मुझे कमजोर व लालसापूर्ण दृष्टि से देखा जाता।

मेरा दिमाग और शरीर दोनों ही सुन्न हो गए थे। शायद मन के साथ साथ अब इन्होंने भी हार मान ली थी।

मैं वो पांच हजार रुपए थामे एक अंधेरे कोने में बैठ गई। बिना किसी सिसकी और क्रंदन के ही अनायास ही मेरी आंखों से आंसू बहे जा रहे थे। अब मुझे खुद पर तरस आ रहा था। अपनी बेबसी पर, गरीबी पर, औरत होने पर, अकेली होने पर। जिंदगी का हर वह पहलू जो मैने भुलाना चाहा था कोई पहाड़ सा बन मेरे सामने खड़ा था जिसे मैं अंधेरे में भी देख पा रही थी। उस पहाड़ की अथाह विशालता के सामने अब मुझे मेरा साहस नगण्य प्रतीत हो रहा था।

वह पहाड़ जिसे अब मैं ताउम्र अपने सामने पाने वाली थी।

हार गई थी मैं। किस्मत के हाथों, समाज के हाथों। मुझे अब अपने शरीर से ही घृणा हो रही थी। इतनी गहरी घृणा कि मन कर रहा था सारी चमड़ी को उधेड़ दूं और उखाड़ फेंकू कहीं ऐसी जगह जहां समाज का कोई मर्द इसे न देख पाए। किसी ऐसी जगह जहां इसकी कोई कीमत न लगा पाए।

फिर जो मांस और हड्डियों का ढांचा बच जाएगा उसकी तो यह समाज कोई कीमत नहीं लगा पाएगा न ? यह तो आदमी और औरत दोनों का सामान होता होगा न ? इसमें तो कोई भेदभाव नहीं होगा ?

पता नहीं कितनी ही देर मैं इसी तरह माथा पकड़े बैठी रही और मेरे आंसू मुझे भिगोते चले गए। जब आंखों में और पानी न बचा और कुछ सुध आई तो

बाहर बादलों की गर्जन सुनी। और फिर एकदम ही मूसलाधार बरसात शुरू हो गई। छत पर किसी के जल्दी जल्दी भागने की आहट सुनाई दी और फिर एकदम वह आहट ऑफिस के दरवाजे के बाहर से आने लगी। किसी ने दरवाजा जोरो से खटखटाया। मैने खोला तो हिमांशी थी। आधी सुखी और आधी भीगी हुई।

दरवाजा खुलते ही वह मेरे गले लग गई और बारिश और तेज होती चली गई। नदियां फिर बहने लग गईं। समुद्र फिर से बनता चला गया।